www.thearyasamaj.org

R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15
नवम्बर 2013
अंक 10

तपोभूमि

मासिक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

विष को पीकर अमृत बाँटा। तेरा ऋणी रहे संसार।।

(निर्वाण दिवस दीपावली)

www.thearyasamaj.org

सम्पादकीय

करुणा सागर महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द बाल ब्रह्मचारी थे इसलिए उनके स्वभाव में समझौता के भाव नहीं आ सके थे क्योंकि ब्रह्मचारी सांसारिक मजबूरियों से मुक्त होता है गृहस्थ आश्रम समझौते का आश्रम है। इसमें पग-पग समझौता करना पड़ता है बिना समझौते के गृहस्थ चल नहीं पाता है क्योंकि उसको सारे पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है। इसलिए व्यक्ति न चाहते हुए भी अपने मान्य सिद्धान्तों का त्यागकर समझौते का मार्ग अपनाकर येन केन प्रकारेण संसार यात्रा पूरी करता है। ब्रह्मचारी के सामने ऐसी समस्या अत्यल्प मात्रा में होती है। इसीलिए बाल ब्रह्मचारी निर्द्वन्द्व होकर अपने पथ पर बढ़ता है। संसार से टकराकर उसको नई दिशा देने में सक्षम होता है। ब्रह्मचारी की इस स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी लोग उसे उद्दण्ड समझ लेते हैं पर वह उद्दण्ड होता नहीं है। महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़कर भी ऐसा ही अनुभव लोग करते हैं। राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर ने तो यहाँ तक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में लिखा है कि महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश ने सभी मत- पन्थों की बखिया उधेड़कर रख दी है। जिसको पढ़करर अच्छे-अच्छे का धैर्य छूट जाता है परन्तु जब हम गहराई से चिन्तन करते हैं तो साफ दृष्टिगोचर होता है कि महर्षि दयानन्द की तथाकथित उद्दण्डता और कठोरता के पीछे अपार करुणा का सागर हिलोरें ले रहा है जो किसी भी प्राणी के दुःख को सहन नहीं कर सकता है। इस आनन्द के सागर संसार में जो आनन्द स्वरूप प्यारे प्रभु ने सब ही के लिए बनाया है उसमें दुःख के कुछ बिन्दु भी यदि कोई डालने की कोशिश करता है तो महर्षि को यह कदापि स्वीकार्य नहीं है। उनका दृढ़ मानना था सत्य की स्थापना के बिना संसार में व्यवस्था नहीं बन सकती है और बिना व्यवस्था से सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य रहेगा जो संसार को दुःख सागर में डुबा देगा। इस तथ्य को उन्होंने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में उद्धृत करते हुए लिखा है कि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

इसीलिए यदि किसी व्यक्ति, मत, ग्रन्थ ने सत्य के नाश का जरा भी यत्न किया है वह महर्षि की कठोरता का शिकार हुआ। यहाँ तक कि वह जिस ब्राह्मण कुल में पैदा हुए सत्य को नष्ट करने के कारण उन्होंने उन्हें भी खूब खरी-खोटी सुनाई और ऐसे झूठों के समूह को ब्राह्मण मानने से भी मना कर दिया और उनका नया नामकरण पोप के नाम से कर दिया। इस प्रकार यदि हम पूर्ण निष्पक्षता से देखें तो जिसे लोग महर्षि दयानन्द की संकीर्ण सोच या उद्दण्डता कहते हैं उसी के ठीक पीछे वे महर्षि के महान् व्यक्तित्व के दिग्दर्शन नहीं कर पा रहे हैं या उनके पास उतनी व्यापक दृष्टि नहीं है कि जो महर्षि दयानन्द के उस विराट व्यक्तित्व को समग्रता से समझने की क्षमता रखता हो। महर्षि दयानन्द की सर्वहितैषी सोच आर्यसमाज की स्थापना के उद्देश्य से ही ज्ञात होती है। वे आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य बताते हुए लिखते हैं कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् उनका व्यक्तित्व किसी देश, काल, व्यक्ति समाज की तुच्छ जंजीरों में जकड़ा न होकर विराट् भाव लिये हुए थे। जिसमें सारे संसार का कल्याण निहित था। सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ की एक-एक पंक्ति प्राणिमात्र

-शेष कवर पृष्ठ सं. 35 पर

www.thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–59 | संवत्सर 2070 | नवम्बर 2013 | अंक 10

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

नवम्बर 2013

सृष्टि संवत्
1960853114

दयानन्दाब्द: 190

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ.प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय	–आचार्य स्वदेश	
वेदवाणी	–ध्रुवदेव परिव्राजक	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेघाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–11
आत्म संयम योग	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	12–15
आर्ष–पाठविधि की उपयोगिता.....	–डॉ0 सुरेन्द्रकुमार आचार्य	16–17
धूर्त जन	–ओमप्रकाशसिंह	18–19
वेद, धर्म व विज्ञान का स्रोत.....	–मनमोहन कुमार आर्य	20–23
वार्षिकोत्सव पर पुलिस की रेड और सत्यार्थ प्रकाश उठा ले गये	–प्रो0 उमाकान्त उपाध्याय	24–26
वृहद विमान शास्त्र	–कृपालसिंह वर्मा	27–28
मेरी अपनी कुछ मान्यताएँ	–खुशहालचन्द्र आर्य	29–31
आर्यों की भावानात्मक एकता		32–33
मेरी ममता को ज्ञान मिले	–श्रीमती विद्यावती मिश्र	34

❀ ❀ ❀

वार्षिक शुल्क 150/ | पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

www.thearyasamaj.org

वेदवाणी

लेखकः स्वामी ध्रुवदेव परिव्राजक आर्यवन रोजड़, (गुज.)

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।। यजु. अ. 32/ मं. 14

पदार्थः–

हे (अग्ने) सर्वज्ञ स्वयंप्रकाशस्वरूप होने से विद्या को जानने वाले परमेश्वर! (यां मेधां) जिस विज्ञानवती यथार्थ धारण करने वाली बुद्धि वा धन को (देवगणाः पितरश्चोपासते) विद्वानों के समूह, यथार्थ पदार्थ विज्ञान वाले रक्षा करने वाले ज्ञानी लोग और योगी लोग धारण करते हैं या प्राप्त होके सेवन करते हैं (तया मेधया) उस बुद्धि वा धन के साथ (अद्य) इसी समय कृपा से (माम्) मुझको प्रशंसित बुद्धि वा धन वाला कीजिए। (स्वाहा) इसको आप अनुग्रह व प्रीति से स्वीकार कीजिए, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो। (आर्याभिविनय+ऋ. दया. कृत यजुर्वेद भाष्य+ सत्यार्थ प्रकाश)

व्याख्यानः–

हे परमात्मन्! आप अपनी कृपा से, जो अत्यन्त उत्तम सत्यविद्यादि शुभगुणों को धारण करने के योग्य बुद्धि है, उससे युक्त हम लोगों को कीजिए, कि जिसके प्रताप से देव अर्थात् विद्वान् और पितर अर्थात् ज्ञानी होके हम लोग आपकी उपासना सब दिन करते रहें। स्वाहा अर्थात् –

(1) (सु–आहेति वा) अर्थात् सब मनुष्यों को अच्छा, मीठा, कल्याण करने वाला और प्रियवचन सदा बोलना चाहिए।

(2) (स्वं प्राहेति वा) अर्थात् सब मनुष्य अपने पदार्थ को ही अपना कहें, दूसरे के पदार्थ को कभी नहीं अर्थात् जितना–जितना धर्मयुक्त पुरुषार्थ से उनको पदार्थ प्राप्त हो, उतने ही में सदा सन्तोष करें।

(3) (स्वा–वागोहेति वा) अर्थात् मनुष्यों को यह निश्चय करके जानना चाहिये, कि जैसी बात उनके ज्ञान के बीच में वर्तमान हो, जीभ से भी सदा वैसा ही बोले, उससे विपरीत नहीं।

(4) (स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा) अर्थात् सर्व दिन अच्छी प्रकार सुगन्ध आदि द्रव्यों का संस्कार करके सब जगत् के उपकार करने वाले होम को किया करें। और 'स्वाहा' शब्द का यह भी अर्थ है कि सब दिन मिथ्यावाद को छोड़ के सत्य ही बोलना चाहिए।

भावार्थः–

मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्धविज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरों को भी ऐसे ही प्राप्त करावें। ❀❀❀

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखक: आचार्य मेधाव्रत

तदा दुरारोहसुदुर्गमाद्रेर्यात्रां स्वयं पुण्यचरित्रशाली।
गवेषणार्थं महतां यतीनां समाधिभाजां विदधौ समन्तात्॥ 82॥

तब पुण्यचरित्रशाली स्वामी ने स्वयं ही दुरारोह एवं दुर्गम पर्वतों की यात्रा का निश्चय किया और इसलिये ये महान् समाधिधारी यतियों के अन्वेषण के लिये वहाँ से चल पड़े॥ 82॥

दुरन्तशैत्यं सहितुं न शक्तास्तत्संगिनस्तं विजहुर्द्रुतं ते।
अनन्तधैर्यो दिनविंशतिं स व्यर्थं भ्रमित्वा न्यवृतन्निशान्ते॥ 83॥

स्वामीजी की इस यात्रा में उनके कुछ साथी भी थे। वे तो भयानक शीत को सहन न कर सके। इसलिये शीघ्र ही स्वामीजी को छोड़कर वे लौट आये, परन्तु स्वामीजी का धैर्य तो अखूट था। वे 20 दिन तक बर्फीले पहाड़ों पर घूमते रहे; अन्त में उन्हें निराश हो लौट आना पड़ा॥ 83॥

उत्साहसम्पत्तिमतां धुरीणस्तपोधनान्वेषणकर्मणोऽसौ।
मनाङ् न धीमान् विरराम खेदाद् ध्येयान्न धीरा विरमन्ति नूनम्॥ 84॥

उत्साहरूपी सम्पत्तिशालियों में अग्रगण्य धीमान् दयानन्द योगियों के अन्वेषण कार्य में जरा भी रुके नहीं, क्योंकि सचमुच विद्वान् लोग आपत्ति से घबराकर अपने ध्येय से पृथक् नहीं होते॥ 84॥

भ्राम्यन्नथोत्तुंगनगोत्तमांगं स तुंगनाथाख्यमगान्मुनीन्द्रः।
वीक्ष्यालयं पूजकमूर्त्तिपूर्णं सद्यस्ततोऽवातरदह्नितस्मिन्॥ 85॥

मुनीन्द्र घूमते हुए तुंगनाथ नामक ऊँचे गिरि शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ तो उन्हें वे सब स्थान मूर्त्तिपूजकों से भरे हुए दृष्टिगोचर हुए; इसलिये वे शीघ्र ही उसी दिन नीचे उतर आये॥ 85॥

द्रागुत्तरन् विस्मृतमुख्यमार्गोययौ घनारण्यपथं स घोरम्।
विशालपाषाणकुलाकुलान्तं निरम्बुगम्भीरझरीपरीतम्॥ 86॥

शीघ्रता में उतरते हुए वे मुख्य मार्ग भूल गये और घनघोर जंगल में जा पहुँचे, जो जंगल बड़े-बड़े उबड़खाबड़ शिलाखण्डों और निर्जल एवं गहरे नालों से घिरा था॥ 86॥

अध्वानमल्पं चलितो लुलोके मार्गं निरुद्धं पुरतो लताभिः।
सकण्टकाभिर्घनपल्लवाभिर्भयंकरैर्गर्त्तवरैः प्रकीर्णम्॥ 87॥

थोड़ी दूर आगे जाने पर इन्होंने देखा कि रास्ता तो कँटीले और गाढ़े पत्तों वाले वृक्षों से एवं

www.thearyasamaj.org

भयंकर दरों से व्याप्त हैं॥ 87॥

आरोहणं प्राणहरं महाद्रेः समीक्ष्य भित्तेरिव तन्निशायाम्।
उपस्थितायां विकटाटवीस्थः प्रक्रान्तवान् सोऽवतरीतुमार्यः॥ 88॥

उस रात को यदि फिर लौट जाते हैं तो सीधी दीवाल की तरह पर्वतराज की प्राणघाती चढ़ाई है। इसलिये रात्रि आजाने पर इन्होंने इस विकट जंगल में से नीचे उतरना ही श्रेयस्कर समझा॥ 88॥

गुल्मालिमालंव्य दृढ़ं कराभ्यां शनैः शनैरुत्तरितुं प्रवृत्तः।
मुहूर्त्ततः प्रोच्चतटं तटिन्याः स निर्जलायाः धृतिमान् प्रपेदे॥ 89॥

स्वामी जी धीरे-धीरे हाथों से झाड़ियों को पकड़ पकड़ कर उतरने लगे। थोड़ी ही देर में धैर्यधनी दयानन्द एक सूखी नदी के ऊँचे किनारे पर आ पहुँचे॥ 89॥

विशंकटांगीमधिरुह्य तुंगां ततः शिलामेष समासु दिक्षु।
निपातयँश्चक्षुरुदारभिक्षुर्ददर्श कान्तारमगम्यभीमम्॥ 90॥

उदार भिक्षु ने बाद में एक विशाल ऊँची शिला पर चढ़कर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तो उनके सामने एक महान्, विशाल, भयंकर, अगम्य जंगल दिखाई पड़ा॥ 90॥

अभ्रंलिहोर्वीरुहसंनिरुद्धाः सूर्याशवो नो विविशुर्दिवाऽपि।
यस्मिन् प्रदोषे तिमिरस्य तस्मिन् स्वच्छन्दराज्यं न भवेत्कथं नु॥ 91॥

जिस जंगल में दोपहर के समय भी गगनस्पर्शी वृक्षों से रुकी सूर्य किरणेंअन्दर नहीं पहुंच सकतीं, वहाँ भला सायं समय में ही अन्धकार का स्वच्छन्द राज्य क्यों न हो॥ 91॥

स कण्टकाकीर्णपथेन गच्छन् क्षताखिलांगः प्रविदीर्णवासाः।
पदे पदे कष्टमलं सहिष्णुर्जहौ न धैर्यं पुरुषार्थिवर्यः॥ 92॥

पुरुषार्थियों में श्रेष्ठ दयानन्द कंटकाकीर्ण मार्ग से आगे बढ़ने लगे। इनके सारे अंग काँटों से क्षत-विक्षत हो गये और कपड़े फट गये। पद-पद पर इन्हें अतिशय कष्ट सहने पड़े तो भी धैर्य नहीं छोड़ा॥ 92॥

आदित्यतेजोधरवर्णिराजं दुःखाम्बुधौ मग्नमिमं निरीक्ष्य।
सूर्योऽस्तशैलेश्वरकन्दरान्तस्तप्तुं तपोऽगान्नु विरक्तरूपः॥ 93॥

आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द को दुःख-सागर में डूबा देखकर सूर्य भी विरक्त होकर मानो तपश्चरण के लिये अस्ताचल की कन्दरा की ओर चल पड़ा॥ 93॥

अस्ताचलालम्बिनमर्कबिम्बं विलोक्य चेतस्यभवन्मुनेर्यत्।
ध्वान्ते प्रवृद्धे गहने वनेऽस्मिन् विनाम्बुवह्नी नु कथं वसेयम्॥ 94॥

सूर्यमण्डल को अस्ताचलगामी देखकर स्वामीजी के मन में विचार आया कि अन्धकार बढ़ जाने पर इस गहन वन में अग्नि और पानी के बिना मैं कैसे रहूँगा॥ 94॥

पुमर्थप्राबल्यमहाप्रभावात् पंगूपमोऽयं प्रथितानुभावः।
उल्लङ्घ्य निम्नोन्नतशैलभूमिं समाययौ पर्वतपादमूलम्॥ 95॥

www.thearyasamaj.org

ये विख्यात तेजस्वी पैरों में छाले पड़ जाने पर भी पुरुषार्थ की प्रबलता के महान् प्रभाव से नीची ऊँची शैलभूमि को लांघकर पर्वत की तलेटी में आ गये॥ 95॥

दृष्ट्वाऽयनं तत्र तमोवृतेऽसौ तदेव संश्रित्य चलन् प्रवीरः।
पुरः कुटीः प्राप्य कुटीस्थलोकान् पृष्ट्वा तमोखीमठमापदीडयम्॥ 96॥

स्वामीजी अंधकारवृत्त जंगल में एक रास्ता देखकर उस के सहारे चल पड़े, और थोड़ी दूर पर उन्हें कुछ कुटियाँ दिखाई दीं। वहाँ के लोगों से पूछकर विख्यात ओखीमठ आ गये॥ 96॥

पाखण्डलीनैर्वृषदम्भनिष्णैः संन्यासिभिर्लौकिकमोहमग्नैः।
आलोकि पूर्णो यमिना मठोऽयं मूढैस्स्तुतो विस्मितमानसेन॥ 97॥

ओखी मठ में स्वामीजी ने आश्चर्य मन से देखा कि संन्यासी लोग लौकिक मोह में मग्न होकर धर्म के बहाने पाखण्ड-लीला कर रहे हैं। मूर्ख ही इनकी प्रशंसा करते हैं॥ 97॥

ज्ञानेन शीलेन गुणेन मुग्धोमठाधिपोऽमुष्य यतेः प्रकामम्।
प्रसन्नचेता विजितेन्द्रियं स तमब्रवीदित्थमनर्घशीलम्॥ 98॥

इस मठ में महन्त संन्यासी दयानन्द के ज्ञान, चारित्र्य एवं गुणों पर मुग्ध हो गये और अत्यन्त प्रसन्न होकर उदात्त चरित्र से सम्पन्न, इन्द्रियविजयी दयानन्द से बोले कि:-॥ 98॥

भवेर्मम त्वं यदि सौम्य शिष्यस्तदाऽखिलाया मम सम्पदायाः।
अधीशतां तुभ्यमहं समर्प्य सम्मानभाजं महतां विदध्याम्॥ 99॥

हे सौम्य! यदि तू मेरा शिष्य हो जाय तो मैं अपनी कुल जागीर का तुझे स्वामी बना दूँ और तुम बड़ों-बड़ों के भी सम्मान-पात्र बन जाओगे॥ 99॥

दुःखाकरेऽस्मिन् गिरिकानने त्वं भ्रमन् वपुस्स्वं कमनीयरूपम्।
क्लेशैरनन्तैस्तपसामपात्रं क्लिश्नासि भोगार्हमये किमर्थम्॥ 100॥

हे सौम्य! तुम इस दुःखकारक जंगल और पर्वत में भटकते हुए अपने सुन्दर शरीर को अनन्त क्लेशों से क्यों दुःखी कर रहे हो? यह शरीर तो भोग के योग्य है, तपश्चरण के योग्य नहीं॥ 100॥

मठेशवाणीं निशमय्य वाग्मी स्मितप्रभानिन्दितशारदेन्दुः।
मुक्तैषणो युक्तमना मुनीन्द्रः सप्रश्रयं वाचमुवाच चामुम्॥ 101॥

अपने मन्दहास्य से शरत्कालीन चन्द्र को लज्जित करने वाले, तीनों एषणाओं से रहित, समाहित चित्तवाले, वाग्मी मुनीन्द्र, मठाधीश की वाणी सुनकर विनयसहित बोले॥ 101॥

वित्तं पितुर्मे विपुलं महात्मन्! श्रीमद्धिरण्यादपहाय सर्वम्।
मृत्पिण्डतुल्यं विषवच्च भोगान् मोक्षाभिलाषी निरगां वनाय॥ 102॥

हे महात्मन्! मेरे पिताजी की सम्पत्ति तो आपकी सम्पत्ति से भी अधिक थी। उन सब को मिट्टी

www.thearyasamaj.org

के ढेले की तरह छोड़कर और भोगों को विषतुल्य समझकर मुक्ति की इच्छा से जंगल के लिये निकल पड़ा हूँ॥ 102॥

सत्यं शिवं शंकरमाप्तुकामोयोगेश्वराद् योगकलां प्रलिप्सुः।
गुहां विचिन्वन्निह सिद्धवासां सोऽहं चराम्यद्रिवने विरक्तः॥ 103॥

मुझे तो 'सत्यं शिवं शंकरम्' का साक्षात्कार करना है और योगिजनों से योगकला की प्राप्ति करनी है। अतएव विरक्त होकर सिद्धों की गुफाओं का अन्वेषण करते हुए जंगलों और पर्वतों में भटक रहा हूँ॥ 103॥

मुनीन्दुवदनाद् वचोऽमृतमनिन्दितं स्यन्दितं पिबंश्रुतिपुटैस्सविस्मितमना मठाधीश्वरः।
सुयौवनभुजोऽपि मन्मथजितः स्पृहाहीनतां समीक्ष्य मुदितो निवस्तुमगदत्तमात्मान्तिके॥ 104॥

मुनिवर दयानन्द के मुखचन्द्र से झरते हुए पवित्र वचनामृत को कान के दोनों से पीता हुआ मठाधीश महन्त विस्मित हो गया। और सुन्दर यौवनशाली होते हुए भी इनको कामदेव के जीतने में समर्थ एवं निस्पृह देखकर मुग्ध हो गया और उसने इनसे अपने पास ही रहने की प्रार्थना की॥ 104॥

प्रभुवरपदलाभे प्रत्तचित्तः सुखं यस्त्रिभुवननृपमानं मोक्तुमेवोद्यतः स्राक्।
मठपरिवृढसृष्टैभपाशैः कथं सप्रथितयतिगजेन्द्रो ब्रह्मविद् ग्रथितः स्यात्॥ 105॥

जो ईश्वरर की प्राप्ति के लिये दत्तचित्त होकर सरलता से तीनों भुवनों के राजसम्मान को भी लात मार देने को तैयार हो, वही ब्रह्मवेत्ता विख्यात यतिरूपी गजेन्द्र भला मठाधीश के फैलाये लोभ पाशों से कैसे बांधा जा सकता है॥ 105॥ ❀❀❀

सूचना

मई व जून 2011 व 2012 की दो माह की पत्रिकायें सदैव की भांति गत वर्ष भी नहीं भेजी गई थीं। क्योंकि इन दो माह के बदले में विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। अतः पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी कि वर्ष 2011 व वर्ष 2012 का विशेषांक **'नित्यकर्मविधि'** के रूप में पाठकों को भेजा जा रहा है। विलम्ब तो हुआ है लेकिन आप निराश न हों शीघ्रातिशीघ्र वर्ष 2013 व वर्ष 2014 का विशेषांक भी आपको अवश्य ही भेजा जायेगा। मात्र डाकव्यय की वी. पी. पी. द्वारा ही यह विशेषांक पहुंचना संभव है इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जैसे ही **'सत्यप्रकाशन' से वी. पी. पी.** आपके घर पहुँचे तो छुड़ाने का कष्ट अवश्य करें। ताकि आप और हम प्रसन्न रहें।

—व्यवस्थापक

www.thearyasamaj.org

योगेश्वर कृष्ण

अभिमन्यु की वीरता

लेखकः पं. चमूपति

महाभारत के पश्चात् कौरव-दल के मुख्य सेनापति द्रोण हुए। उनसे दुर्योधन ने प्रार्थना की कि आपका सारा प्रयत्न अब युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने में लगना चाहिए। क्योंकि, यदि युधिष्ठिर मारा गया तो अर्जुन अपने भाई का बदला लेने में अपनी पूरी शक्ति लगाएगा और कौरवों का सफाया कर देगा। परन्तु यदि युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लिया जाए तो उसे फिर जुए पर प्रसन्न किया जा सकता है। जुए की शर्त फिर वही लम्बा वनवास हो जाएगा। इससे राज्य फिर हमारा हो जाएगा। द्रोण ने कहा- ''युधिष्ठिर को जीवित पकड़ना संभव तो है, परन्तु उसी समय, जब अर्जुन उसकी सहायता के लिए उपस्थित न हो।'' सो एक दिन द्रोण ने युधिष्ठिर को पकड़ने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु इसमें उन्हें सफलता न हुई। दूसरे दिन त्रिगर्त (जालन्धर) के राजा सत्यरथ ने अपने चार भाइयों-सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु, सत्यकर्मा-समेत अग्नि को साक्षी कर शपथ खाई कि 'हम अर्जुन को ललकारकर युद्ध- क्षेत्र से दूर ले जायेंगे, और हटेंगे तभी जब उसको मार डालेंगे।' त्रिगर्तराज का पाण्डवों से पुराना वैर चला जा रहा था। अर्जुन ने उसे कई बार नीचा दिखाया था। इस कसक के निकालने का अवसर अब उसके हाथ आया। 'महाभारत' में इन शपथ लेनेवाले त्रिगर्त-बन्धुओं को संशप्तक-गण कहा है।

अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा का भार धृष्टद्युम्न पर डालकरर संशप्तक-गण से लड़ने लगा। इस लड़ाई में उसने और श्रीकृष्ण ने ऐसा युद्ध-कौशल दिखाया कि शत्रुओं का भयंकर संहार हुआ। उनसे निवृत्त होकर इन्होंने साधारण युद्ध में भी भाग लिया।

दूसरे दिन अर्जुन को फिर संशप्तकों ने एक ओर बुला लिया। इधर द्रोणाचार्य ने अर्जुन की पीठ-पीछे चक्रव्यूह रचा। इस व्यूह के भेदन का ढंग कृष्ण, अर्जुन के सिवाय इन दो वीरों के सुपुत्र, प्रद्युम्न और अभिमन्यु ही जानते थे। प्रद्युम्न तो लड़ाई में आया न था। आखिर इस दिन की लड़ाई का सारा भार अभिमन्यु पर आ पड़ा। उसकी आयु जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, 30 वर्ष के लगभग थी। युद्ध का प्रमुख संचालक होने के लिए वह अभी बच्चा ही था। वह पाण्डवों और यादवों-दोनों की आँखों का तारा था। युधिष्ठिर की सत्य-प्रतिज्ञा, भीम का बल तथा शत्रु-संहार का सामर्थ्य, अर्जुन की युद्ध-कुशलता, नकुल का विनय और आत्म-संयम, सहदेव की सौम्य आकृति और मनमोहक भाषण-ये सभी गुण एक अभिमन्यु में इकट्ठे हो गए थे। इनके साथ-साथ कृष्ण की बुद्धिमत्ता और उदात्त चरित की गुण-गरिमाओं

www.thearyasamaj.org

के मेल ने अभिमन्यु को अपने समय का अद्वितीय वीर बना दिया था। मातृवंश तथा पितृवंश, दोनों की दृष्टि में अभिमन्यु एक अनमोल मोती था जिसकी रक्षा सबको अभीष्ट थी। परन्तु इस समय संकट ऐसा ही था कि बिना अभिमन्यु की जान जोखों में डाले उससे पार पाना असम्भव था। युधिष्ठिर ने विवश हो आज के युद्ध का अगुआ अभिमन्यु को बनाया। अभिमन्यु के सारथि ने उसे रोका, परन्तु वीर-पुत्र रोके से रुक थोड़े ही जाते हैं।

अभिमन्यु आगे बढ़ा। द्रोण के नेतृत्व में सब कौरव महारथी इसके सम्मुख हुए। यह सबको परास्त करता हुआ व्यूह में प्रविष्ट हुआ। इसके पीछे-पीछे पाण्डव-दल के अन्य महारथी भी आ रहे थे। अभिमन्यु ने व्यूह में छिद्र तो कर ही दिया था। सब उस द्वार से घुस जाते, परन्तु कौरव-दल के प्रमुख वीरों का वहीं जमाव हो गया। धृतराष्ट्र का जामाता सिन्धुराज जयद्रथ पाण्डवों का वैरी था। भीमसेन ने उसे द्रौपदी के स्वयंवर में नीचा दिखाया था। उसने उस अपमान का आज बदला लिया। ऐसी वीरता से लड़ा कि अभिमन्यु के पीछे कोई पाण्डव-योद्धा व्यूह के अन्दर घुस नहीं सका, यहाँ तक कि अभिमन्यु के अस्त्र-शस्त्र भी पीछे रह गए।

इस प्रकार अभिमन्यु कौरव-दल की असंख्य अक्षौहिणियों में अकेला घिर गया। इस अकेले ने युद्ध-विद्या के जौहर दिखाए कि बड़े-बड़े योद्धा दंग रह गए। कौरव-दल के जो वीर इसके सामने आए, खेत रहे। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण, कोशल का राजकुमार बृहद्बल, अंगराज कर्ण के छः सचिव, मगध राजकुमार इत्यादि तो जान से हाथ धो बैठे, और शकुनि, कर्ण, शल्य, दुःशासन, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, दुर्योधन आदि सभी वीर अकेले-अकेले अभिमन्यु से लोहा लेने में असमर्थ रहे। अभिमन्यु के धनुष के चलाने में अन्तर पड़ता ही न था। कोई उस पर आक्रमण करे तो कैसे? अन्त को द्रोण, अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, कृतवर्मा और बृहद्बल-इन छः रथियों ने इकट्ठे मिलकर अकेले पाण्डव-कुमार को घेर लिया। इन सबका मुकाबला भी उसने सफलतापूर्वक किया। यहाँ तक कि बृहद्बल तो जैसे हमने कहा है, मारा ही गया। अब कर्ण ने द्रोण से मन्त्रणा की-"इस घोर विपत्ति का उपाय क्या?" द्रोण ने देखा कि कौरव-दल में अभिमन्यु केवल अकेला ही नहीं आया, अपितु इसके पास धनुष आदि युद्ध के शस्त्र भी एक-एक हैं। फालतू सामान की गाड़ी चक्रव्यूह में प्रवेश नहीं पा सकी। उसने कर्ण को कहा-"इस विपत्ति का इलाज है-अभिमन्यु का धनुष तोड़ना या रथ बिगाड़ देना।" आफत यह है कि न इसका रथ ठहरता है, न हाथ। कहीं कोई चीज रुके तो कोई उस पर वार भी करे। आलात-चक्र के-से घुमाव में क्या पता लगे, रथ कहाँ है? कमान कहाँ?" कर्ण ने अपनी धनुर्विद्या को सफल किया, अभिमन्यु की चक्कर काटती कमान को, जो बिजली की तरह अस्थिर थी, अपने तीरों का निशाना बनाके तोड़ दिया। अब घोड़े चलने से रुक गए। भोजराज ने उन्हें काट गिराया। कृप ने सारथि और पार्ष्णि को मार डाला। अभिमन्यु रथ से उतर आया। कोई साथी था नहीं, जिसके रथ पर वह चढ़ जाता। अब वह अकेला रथ से विरथ हुआ, बिना तीर-कमान का योद्धा एक ओर था और सारा कौरव-दल अपनी सुसज्जा के साथ दूसरी ओर। अभिमन्यु तलवार

www.thearyasamaj.org

लिये पर-सेना पर लपक रहा था। हाथ की उस्तादी यह कि सभी प्रतिरोधी यही समझ रहे थे कि लो! वह तलवार अभी मुझ पर गिरी कि गिरी। इतने में द्रोण ने तीरों से तलवार की मुट्ठी चीर दी। कर्ण ने चर्म (ढाल) छेद दिया। अब अभिमन्यु ने श्री कृष्ण का हथियार-चक्र उठाया। हत्यारों ने मिलकर उस पर भी तीरों की वर्षा की। वह भी काम का न रहा। अभिमन्यु का अन्तिम शस्त्र था गदा। उसे लेकर दौड़ा। अश्वत्थामा सामने था। वह रथ से हटकर तीन पग पीछे चला गया। उसके घोड़े मारे गए और सारथि और पार्ष्णि की भी जान निकल गई। दु:शासन के पुत्र ने गदा उठाकर अभिमन्यु का सामना किया। वह अकेला होता तो एक क्षण भी अभिमन्यु के आगे खड़ा न रह सकता, परन्तु और महारथी भी साथ-साथ तीर बरसाते जा रहे थे। एक साथ दु:शासन-सुत और अभिमन्यु धम से पृथिवी पर गिर पड़े। दु:शासन-सुत पहले उठा। उसने गदा लेकर अभिमन्यु के सिर पर इस जोर से चोट की कि उसने उठते-उठते तीरों की बौछार के बीच में प्राण त्याग दिये। सब ओर हाहाकार मच गया-अभिमन्यु मारा गया। सारा दिन इस अकेले बालक ने कौरव-दल के वृद्ध तथा युवा वीरों के छक्के छुड़ाए रखे थे। इधर तो केवल शस्त्राभाव के कारण विवश हुआ वह धुरन्धर धनुर्धारियों की शर-वर्षा को सहन करता था, उधर दु:शासन के पुत्र से गदा से दो-दो हाथ करने लगा। इस अवस्था में भी अश्वत्थामा का रथ, सारथि आदि मार गिराए और उसे सामने न आने दिया। इस विवशता की दशा में यदि अभिमन्यु युद्ध में आगे बढ़ने के स्थान में पीछे की ओर लौटता तो संभवत: उसकी हत्या न होती और विजय पाण्डवों की रहती। परन्तु अभिमन्यु की शिक्षा में, जैसे अर्जुन ने पुत्र-वध का विलाप करते हुए बतलाया, अभी अपूर्णता थी। चक्र-व्यूह के भेदन की उसे प्रवेश-विधि तो सिखाई जा चुकी थी, और वह स्वयं उसके पिता अर्जुन के द्वारा, परन्तु निर्गमन-बाहर निकलने-की विधि वह अभी नहीं सीखा था। तभी तो महाभारतकार कहते हैं कि अभिमन्यु अभी बच्चा था। गुरू-गर्भ से अभी निकला ही न था। युद्ध में मानो शस्त्र-क्रीड़ा के अभ्यास के लिए आया था। चक्र-व्यूह की भूल-भुलैयाँ में दिन-भर घूमा। अन्त को कुछ तो व्यूह के गोरख-धन्धे ने, और कुछ कौरवों की क्रूरता ने उस गुरु-गर्भस्थ बालक का घात कर दिया।

अभिमन्यु की वीरता रोमांचकारिणी थी, तो हत्या अत्यन्त हृदय-विदारिणी। पाण्डव-दल पर इस घटना से मानो वज्र-पात हो गया। तो क्या कौरव-दल सुखी था? इस लाल सायंकाल में अभिमन्यु का निष्पाप लहू द्रोण, द्रौणि, कृप, कर्ण, कृतवर्मा, दुर्योधन और दु:शासन, सभी के सिर पर भूत की तरह सवार था। क्षत्रियों के स्थान में कसाई होते तो संभवत: चैन की नींद सो सकते। काम कसाईयों का-सा कर गुजरे थे, परन्तु हृदय को क्या करें? वह अभी कसाई न था। विजय पाई सही, परन्तु किसने? एक नि:शस्त्र बालक पर इतने धनुर्धरों की संयुक्त शर-वर्षा ने, और वह भी सीधे, सामने से आकर वीर की तलवार से लोहा लेकर नहीं, दु:शासन-सुत की गदा की आड़ में। कमानें कड़क-कड़ककर कह रही थीं-विजय अभिमन्यु की हुई है। गदा लज्जित थी कि किस गीदड़ के हाथों सिंहसुत के सिर गिरी हूँ। जीते अभिमन्यु ने तो इनकी भुजाओं को हराया था, मरे अभिमन्यु ने हृदयों को हिला दिया। रात की साँय-साँय में

-(शेष पृष्ठ सं.17 पर)

www.thearyasamaj.org

आत्म संयम योग

लेखकः डॉ0 सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

संन्यासी और योगी कौनः– जो व्यक्ति अपने कर्तव्य कर्म को करते हुए कर्मफल पर आश्रित नहीं रहता है वह संन्यासी है और वही **योगी** है। अग्निहोत्रादि कर्मों को न करना अथवा जिसने कर्म करना ही छोड़ दिया है, जो चुपचाप बैठा है वह **संन्यासी** या **योगी** नहीं है। संन्यासी के लिये हवन करना आवश्यक नहीं होता है, वह तो प्राणिमात्र के कल्याण और ईश्वरोपासना में संलग्न रहता है। जो व्यक्ति अग्निहोत्र छोड़कर अन्य परोपकार या जनकल्याण के कार्य को निष्काम भाव से यदि नहीं करता है तो वह संन्यासी या योगी नहीं है। वास्तविक अर्थों में वही योगी और सच्चा संन्यासी होता है जो कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर अपना धर्म या कर्तव्य समझकर जनकल्याण के कार्य करता है। कर्मयोगी अपने लक्ष्य में कब सफल होता है इस विषय में लिखा है कि जब कोई मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में अथवा कर्मफल में आसक्त नहीं रहता है। फल की सब इच्छाओं का परित्याग कर देता है तब उसे **योगारूढ़** कहते हैं। जिस व्यक्ति ने विषय वासनाओं पर अधिकार कर लिया हो, कर्मफल के प्रति आसक्ति नहीं रखता है तथा भौतिक सुख सुविधा को प्राप्त करने की इच्छा का परित्याग कर दिया हो, वह कर्मयोग के मार्ग पर आरूढ़ हो गया है अर्थात् चलने लगा है।

मनुष्य स्वयं अपना मित्र और शत्रुः– मनुष्य स्वयं अपने को शुभ कर्मों की ओर चलने की प्रेरणा दे। अच्छे और बुरे कर्मों के फल सुख और दुःख को देखते हुए स्वयं शुभ कार्य करने का संकल्प करे। शुभ कर्मों को करते हुए भी फल की आसक्ति का त्याग करे, क्योंकि इससे उसी को लाभ होगा। इसलिये गीता यह सन्देश दे रही है कि मनुष्य को चाहिये कि वह अपना उद्धार अपने आप स्वयं ही करे। अपने आपको नीचे न गिरने दे। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है। जैसे मनुष्य शत्रु को दुःख देते हैं और मित्र सुख देते हैं वैसे ही यदि मनुष्य अशुभ कार्य करेगा तो उसे उसका फल दुःख प्राप्त होगा और अच्छे कार्य करेगा तो उसे उसका फल सुख प्राप्त होगा। इसलिये सुख और दुःख मनुष्य को अपने कर्मों के द्वारा ही प्राप्त होता है इसलिये अशुभ कार्य करते समय वह अपना शत्रु है और अच्छे कार्य करते हुए वह अपना बन्धु है, सखा है। इन सारे परिणामों पर विचार करते हुए उसे अपनी आत्मिक उन्नति करते रहना चाहिये। इस विषय में लिखा है कि जिस व्यक्ति ने अपने मन को जीत लिया है, उसका आत्मा उसका मित्र है और जिसने अपनी आत्मा से अपने मन को नहीं जीता है अर्थात् अपना मन वश में नहीं किया है तो वह अपने साथ ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

लाभ हानि में स्थिर मतिः– जब व्यक्ति ज्ञान विज्ञान से तृप्त है जो स्थिर मति है, अपरिवर्तनशील है जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है जिसका मन वश में है। जिसके लिये मिट्टी का ढेला, पत्थर

www.thearyasamaj.org

और सुवर्ण एक समान है ऐसे कर्मयोगी को युक्त अर्थात् परमात्मा से जुड़ा हुआ कहा जाता है अर्थात् ऐसा कर्मयोगी ही परमात्मा को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। कर्मयोगी सुख-दु:ख, जय-पराजय, लाभ-हानि, अनुकूल-प्रतिकूल आदि द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाता है सभी अवस्थाओं में वह स्थिर मति रहता है, इसलिये सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन मध्यस्थ, द्वेष करने योग्य, बन्धु, साधु तथा पापी इन सबमें समबुद्धि रखता है। ऐसा साधारण व्यक्ति नहीं अपितु व्यक्ति कर्मयोगी होता है।

उपासना कैसे करे:– मनुष्य निष्कामभाव से कर्म करने में सफलता किस प्रकार प्राप्त करे, इसके लिये ईश्वर की उपासना उसके लिये अत्यावश्यक है। ईश्वर की उपासना कैसे करे इस विषय में गीता के षष्ठ अध्याय के दसवें श्लोक से लेकरर 17वें श्लोक तक अत्युत्तम वर्णन किया गया है। ईश्वर की उपासना एकान्त शान्त स्थान पर करनी चाहिये, जब तक बाह्य वातावररण शान्त नहीं होगा तब तक मन शान्त कैसे होगा। इसलिये उपासना स्थल एकान्त हो स्वच्छ हो उपासना का समय भी ऐसा होना चाहिये जिस समय बाह्य शोर शराबा न हो, वातावरण शान्त हो। उपासना स्थल जहां पर आसन लगाकर उपासक उपासना करना चाहता है वह स्थान ऊंचा, नीचा नहीं होना चाहिये अर्थात् समतल होना चाहिये, नहीं तो बार-बार ध्यान आसन की तरफ जायगा, बैठने में कष्ट होगा तो ध्यान भी नहीं लग सकेगा। उपासक को योगासनों का भी अभ्यास होना चाहिये क्योंकि जब ध्यान में बैठे तब उसकी पीठ, सिर, गर्दन सीधी रहे, बिना हिले डुले स्थिर बैठकर ध्यान करे। यदि थोड़ी देर भी स्थिर आसन में बैठने का अभ्यास नहीं होगा तो ध्यान नहीं लग सकेगा। इसलिये स्थिर आसन में बैठने का अभ्यास रहना चाहिये। योगाभ्यासियों के अनुसार कम से कम **तीन घण्टे एक आसन** में स्थिर बैठने का अभ्यास होने पर ध्यान प्रारम्भ किया जा सकता है।

ध्यान में सफलता:– ध्यान करने वाले को बाहर का कोई भी भय नहीं होना चाहिये। यदि उसे शत्रु आदि किसी का भय रहेगा तो उसका ध्यान नहीं लगेगा। इसलिये उसे निर्भय-भयरहित होना चाहिये। भयरहित होने के लिये संसार में उसे सभी से शत्रुता समाप्त करनी होगी। शत्रुता समाप्त करने के लिये उसे मन वचन कर्म से अहिंसा का पालन करना होगा। इन्द्रियों और मन को वश में करने के लिये ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करना होगा। इन्द्रियों और मन को वश में करके ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करता हुआ शान्त मनवाला होकर इधर उधर न देखकर अर्थात् शारीरिक और मानसिक चंचलता को समाप्त करके नासिका के अग्रभाग पर अपना ध्यान लगावे। ध्यान के बारे में अनेक ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। कहीं पर भृकुटि में ध्यान लगाने का, तो कहीं नासाग्र भाग पर तो कहीं ब्रह्मरन्ध्र या शरीर के किसी भी भाग पर ध्यान को केन्द्रित करने का उल्लेख है। जिसे जहाँ पर सुविधा लगे वहीं पर ध्यान लगाने का अभ्यास करे।

ध्यान में श्रद्धा और निन्तरता:– ध्यान लगाते समय उपासक के लिये यह भी संकेत दिया गया है कि ध्यान का निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। कभी-कभी उपासक का मन में ध्यान लगाने से सफलता मिलेगी भी या नहीं, प्रभु दर्शन होंगे भी या नहीं इस प्रकार के विघ्न भरे विचार आते हैं जिससे वह ध्यान से विरत होने लगता है और कभी-कभी ध्यान नहीं करता है या मन लगाकर ध्यान नहीं करता है, ऐसे व्यवधानों (बाधाओं) से बचने के लिये गीता में **'सतत'** शब्द का प्रयोग करके संकेत दिया है कि **ध्यान निरन्तर**

www.thearyasamaj.org

करना चाहिये। प्रतिदिन ध्यान करने से उपासक उसमें सफलता प्राप्त करता है उसकी उन्नति होती है।

नियमित जीवनः– ध्यान के विषय में एक संकेत और भी दिया है कि जो व्यक्ति बहुत ही खाता है या बिल्कुल नहीं खाता है वह भी योग (ध्यान) में सफल नहीं हो सकता है वह ध्यान नहीं लगा सकता है। ऐसे व्यक्ति के लिये योग नहीं है। अर्थात् योग में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जिसका जीवन नियमित हो समय पर सोना, समय पर उठना, न तो कम सोना न ही दिन रात सोते ही रहना। जिस व्यक्ति का शयन और जागरण नियमित और सन्तुलित होगा वही ध्यान में स्थिर होने में सफल हो सकता है। इसी प्रकार भोजन भी जिसका सन्तुलित हो ऐसा नहीं कि खाने बैठे तो दो चार दिन का एक साथ खा जाय और यदि न खा वे तो दो चार दिन बिल्कुल न खावे ऐसी असन्तुलित वृत्तिवाला व्यक्ति स्थिर चित्त कैसे रह सकता है, जब उसकी बाह्य क्रियाएं ही अस्थिर असन्तुलित और अनियमित है तो वह ध्यान में सफल नहीं होता है। अतः योगाभ्यास करने वाले उपासक के लिये आवश्यक है कि अपने जीवन को सन्तुलित बनावे। इस प्रकार गीता में ध्यानयोग के बारे में आवश्यक निर्देश प्रस्तुत करके उपासकों का मार्ग दर्शन किया है।

योगी को अनुभवः– जब योगी ध्यानस्थ हो जाता है, ध्यान में सफलता प्राप्त कर लेता है तब वह कैसा अनुभव करता है या उसको क्या प्राप्त होता है इस विषय में गीता में लिखा है कि जिस अवस्था में पहुँचकर योगी अतीन्द्रिय हो जाता है क्योंकि इन्द्रियों से तो सांसारिक विषयों का सुख प्राप्त करता है अतः अतीन्द्रिय होकर किन्तु बुद्धिग्राह्य अर्थात् बुद्धि से अनुभव किया जाने वाले परमसुख का अनुभव करता है। अर्थात् प्रभुभक्ति से जो आनन्द प्राप्त होता है वह अनुभव का विषय है। वह इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है और न ही उसका वर्णन वाणी से किया जा सकता है या बतलाया जा सकता है। गुड़ का स्वाद यदि किसी गूंगे व्यक्ति से पूछा जाय तो वह नहीं कह सकता है कि गुड़ कैसा है? गुड़ का स्वाद तो खाकर ही अनुभव किया जा सकता है इसी प्रकार ब्रह्म की उपासना के आनन्द का अनुभव ही किया जा सकता है वह वाणी और लेखनी से अवर्ण्य है।

योगी विचलित नहीं होताः– ध्यान में सफल होने पर व्यक्ति अपने लक्ष्य से चलायमान नहीं होता है। उसमें स्थिरता आ जाती है। बड़े से बड़ा दुःख आने पर भी वह नहीं घबराता है, अपना धैर्य नहीं खोता है, **क्या यह साधारण बात है?** मनुष्य छोटी–छोटी अनुकूल या प्रतिकूल बातों से विचलित और परेशान हो जाता है। किन्तु समाधिस्थ होने पर पहाड़ जैसी आपत्ति में भी नहीं घबराता है। क्या धैर्य सांसारिक वस्तुओं के समान धन (द्रव्य) से खरीदा जा सकता है? नहीं। कभी नहीं खरीदा जा सकता है। इतना ही नहीं प्रभुदर्शन होने पर ध्यानयोगी को संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन, धन–वैभव तुच्छ लगने लगते हैं वह सबसे बड़ा लाभ प्रभुदर्शन ईश्वर के साक्षात्कार को समझने लगता है। इसीलिये कर्मयोगी, संन्यासी–सांसारिक सम्पदा धन–वैभव को मिट्टी के समान समझकर के ठुकरा देते हैं और अपना वीतरागमय जीवन व्यतीत करते हैं जिन्हें कोई विचलित नहीं कर सकता है।

मन की चंचलता और उसको वश में करनाः– संसार में भयंकर से भयंकर आपत्ति और कष्ट के आने पर भी ईश्वर का उपासक नहीं घबराता है। संसार का बड़े से बड़ा भौतिक प्रलोभन उसे विचलित या पथभ्रष्ट नहीं कर सकता, वह सबसे बड़ा उत्तम धन (वैभव) प्रभु दर्शन को ही समझने लगता है। श्री कृष्ण के ये विचार सुनकर अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे श्रीकृष्ण! मन बहुत ही चंचल है। यह मन को मथ डालने वाला

www.thearyasamaj.org

बलवान और हठी है। उसको वश में करना वायु को वश में करने से भी अधिक कठिन है। जब मन ध्यान में नहीं लगेगा तो इसकी चंचलता बनी रहेगी तब ईश्वर का ध्यान कैसे किया जायेगा। इस विषय को समझाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! निःसन्देह मन को वश में करना बहुत कठिन है किन्तु **अभ्यास** और **वैराग्य** से मन वश में किया जा सकता है।

अभ्यास और वैराग्यः– मन की चंचलता को दूर करने के विषय में श्रीकृष्ण ने दो उपाय अभ्यास और वैराग्य बतलाये हैं। योगदर्शन में भी मन को वश में रखने के लिये अभ्यास और वैराग्य का उल्लेख है। किसी भी विषय का बार–बार अभ्यास किया जाय तो निश्चित ही उसमें सफलता प्राप्त होती है। पत्थर पर निरन्तर रस्सी के घिसने से पत्थर भी घिस जाता है उस पर भी रस्सी का निशान हो जाता है। तो मन को वश में करने के लिये योगाभ्यासी निरन्तर प्रयत्न करेगा तो निश्चित ही उसे सफलता प्राप्त होगी। मन को वश करने का दूसरा साधन श्रीकृष्ण ने वैराग्य बतलाया है, जिस विषय के प्रति मन आसक्त हो रहा हो, उस विषय के बारे में सोचना, उसके गुण और दोषों का विश्लेषण करना, जब मनुष्य ऐसा करना प्रारम्भ कर देता है तब मन चंचलता समाप्त हो जाती है और मन वश में हो जाता है यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य गीता में स्पष्ट किया है।

असफल योगी की गतिः– गीता के षष्ठ अध्याय के अन्तिम श्लोकों में अर्जुन एक शंका उपस्थित करता है कि हे कृष्ण! यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा से प्रेरित होकर योग के मार्ग पर चल पड़ा, उसने ईश्वर की उपासना प्रारम्भ भी कर दी किन्तु मन की चंचलता के कारण वह ईश्वर का साक्षात्कार न कर सका, अपने मार्ग से पथभ्रष्ट अर्थात् योगभ्रष्ट हो गया तो वह किस गति को प्राप्त करेगा। अर्थात् श्रद्धा भक्तिवश सांसारिक विषयों (भोगों) से सम्बन्ध तोड़ लिया, अपने आपको हटा भी लिया किन्तु मन के वश में न होने के कारण परमात्मा भी न मिला। वह न इधर का रहा न उधर का रहा, तब उसका क्या होगा? ऐसा प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है। इसका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण ने यथोचित उत्तर दिया कि हे अर्जुन! कल्याणकर्म करनेवाला कभी भी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है। अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति के निमित्त जो उसने शुभ कर्म किया है उसका फल उसको अवश्य मिलेगा। भले ही उसे ईश्वर की प्राप्ति न हुई हो किन्तु जितना कर्म किया है उतना फल तो उसे अवश्य मिलेगा और योगभ्रष्ट व्यक्ति को क्या फल प्राप्त होता है? इस विषय में आगे लिखा है कि ऐसा योगभ्रष्ट व्यक्ति, पवित्र श्रीमान्, अर्थात् धन धान्य से संपन्न वैभवशाली व्यक्तियों के घर में जन्म लेता है अथवा योगियों के कुल में उसका जन्म होता है। श्रीमान् लोगों और योगियों के कुल में जन्म लेना बहुत ही दुर्लभ है।

योगियों के कुल में जन्म लेने के कारण उसको उसी प्रकार का आध्यात्मिक वातावरण मिलेगा जिसके लिये वह पूर्वजन्म में प्रयत्न करता रहा, ऐसे वातावरण में उसके पिछले संस्कार उसको पुनः योगमार्ग की ओर प्रेरित करेंगे और वह इस जन्म में सफलता को प्राप्त करेगा। एक जन्म में ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है तो पूर्व जन्म की योग साधना व्यर्थ नहीं जाती है। उसके संस्कार अगले जन्म में योग करने के लिये उसको प्रेरित करते हैं और उसको ऐसा ही पारिवारिक वातावरण भी मिलता है जिससे वह योगाभ्यास के लिये अपने को लगा सके। कर्मयोगी के लिये ईश्वर की उपासना आवश्यक है और ईश्वर की उपासना कैसे करें यह इस अध्याय में बताया गया है इसलिये इसे 'ध्यानयोग' के नाम से जाना जाता है।' ❀❀❀

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

आर्ष पाठविधि की उपयोगिता और प्रासंगिकता

लेखकः डॉ0 सुरेन्द्रकुमार आचार्य, अलियाबाद, मं. शामीरपेट, जिला–रंगारेड्डी (आं. प्र.)

3. आर्ष पाठविधिः परम्परागत प्राचीन पाठविधि

1. आर्ष पाठविधि सर्वोत्तम और सनातन पाठविधि है। इसका उद्देश्य है–मानव को मानव बनाना, एक धार्मिक एवं नैतिक नागरिक बनाना। धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष की सिद्धि करना। धर्मार्जन करना, धर्मपूर्वक अर्थप्राप्ति करना, अर्थ से काम, अर्थात् आवश्यकताओं की पूर्त्ति करना, और इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति करने के योग्य बनाना। इस प्रकार यह भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ अध्यात्मवाद की पाठविधि है।

2. यह एक विशेषज्ञता की पाठविधि है। विशेषज्ञता का यह कार्य प्रारम्भ से ही शुरू हो जाता है। विशेषज्ञता के लिए एक मुख्य विषय क्रमशः पढ़ा जाता है। अन्य सहयोगी विषय हो सकते हैं।

3. सबके लिए अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए, यदि कोई माता, पिता बालक–बालिका को आठ वर्ष की आयु के उपरान्त गुरुकुल/आश्रम में न भेजें तो शासन की ओर से दण्डनीय हो।

4. सभी प्रकार की शिक्षा पर मानवमात्र का समान अधिकार है। शूद्रों, नारियों, यहां तक कि दस्युओं को भी वेद पढ़ने का अधिकार है। नारियों को पढ़कर योगिनी, मंत्री, योद्धा, न्यायधीश, उपदेशिका, अध्यापिका, राजदूती आदि बनना चाहिए।

5. सहशिक्षा वर्जित है। लड़के–लड़कियों के पृथक्–पृथक् गुरुकुल हों और वे गांव/नगर से 13–14 कि.मीटर दूर हों। सभी का गुरुकुल–निवास विद्या समाप्ति तक अनिवार्य है।

6. शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। आर्थिक प्रबन्ध शासन, धनी वर्ग एवं समर्थ अभिभावकों की ओर से हो। जो माता–पिता गुरुकुल में स्वेच्छा से दान देना चाहें, अथवा छात्र–छात्रा का व्यय देना चाहें, वे भी दें।

7. शिक्षा का मुख्य माध्यम संस्कृतभाषा होगी, देवनागरी या मातृभाषाएँ सहयोगी माध्यम हों। प्रयोजन के अनुसार विदेशी भाषाएँ भी पढ़ायें।

8. वेदानुकूलता में कोई भी सहयोगी ग्रन्थ, विषय या विद्या पढ़ा सकते हैं। वेदविरोधी ग्रन्थ अमान्य हैं। मुख्य विषय निर्धारित हैं। सहयोगी निर्धारित किये जा सकते हैं।

9. पूर्ण शिक्षापद्धति चौदह विद्याओं की प्राप्ति की है। उसमें स्वल्प–अधिक का विकल्प भी

www.thearyasamaj.org

है। रुचि के अनुसार विषयविशेष में विशेषज्ञता प्राप्त की जा सकती है।

10 वर्णानुसार शिक्षा का विकल्प छात्रों पर निर्भर है। अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार किसी भी वर्ण की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

11. कम-से कम सोलह वर्ष तक कन्याओं को और पच्चीस वर्ष तक बालकों को गुरुकुल में रहकर विद्या-अर्जन करना आवश्यक है। विवाह उसके बाद ही होना चाहिये। अधिक विद्यार्जन श्रेयस्कर है। वह विद्यार्थियों की रुचि और योग्यता पर निर्भर है।

12. कला-कौशल, शिल्प-विज्ञान का प्रशिक्षण अवश्य होना चाहिए। किसी भी नये-पुराने कौशल या विज्ञान की शिक्षा वेदानुकूलता से दी जा सकती है। महर्षि की पाठविधि से उसका विरोध नहीं अपितु तालमेल हो।

13. विद्यार्थियों को जो पढ़ाया जाये उसकी समय-समय पर पाठक से इतर विद्वान् परीक्षा लें। यह परीक्षा साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, षाण्मासिक और वार्षिक हो सकती है।

14. जो विद्वान् न भी बन सकें तो उन्हें धार्मिक नागरिक अवश्य बनना चाहिए। जहां नागरिक धार्मिक अर्थात् नैतिक, सभ्य, सुसंस्कृत, सुशील होंगे, वह समाज उन्नत होगा, वहां शान्ति रहेगी।

15. सनातन आर्षपाठविधि का एक महान् लक्ष्य यह है, कि सारे संसार में एक मत 'वेदमत' एक धर्म 'वैदिक धर्म' एक सम्पर्क भाषा 'संस्कृत भाषा' का प्रचलन कर सारे विश्व से लड़ाई-झगड़े, मतभेद मिटाकर उसे एक परिवार के समान बनाना। विश्व में सुख, शान्ति, सभ्यता, सुशीलता, नैतिकता की स्थापना करना। ❁❁❁

पृष्ठ सं.11 का शेष–

अभिमन्यु का रुधिर पुकारता था। भारतों की वीरता का कलंकित माथा खाने को दौड़ता था। कौरव कसाई हैं। कौरव कसाई हैं!– यह ध्वनि थी जो चारों ओर गूँज रही थी। विजयी कौरव अपना-सा मुँह लिये मानो भीरुओं की तरह बिलों में घुसे जा रहे थे। विजय का सेहरा दिग्दिगन्तर संध्या की लालिमा में अभिमन्यु के शोणित-शोभी सिर पर पहना रहे थे। हतोत्साह कौरवों के हृदय में साहस ही कहाँ था कि वीरों के रक्त में नहाई दिशाओं के उस विश्व-व्यापी जय-नाद में अपना करुण स्वर ही मिला सकें। युद्ध की जीत का मोल आत्मा की हार था। ❁❁❁

बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार।
शंकर होता है वहाँ, सबका सर्व सुधार।।
बाल ब्रह्मचारी रहें, पाय प्रताप अखण्ड।
पाठक, आगे देख लो, पाँच प्रमाण प्रचण्ड।।

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

धूर्त जन

रचयिताः ओमप्रकाशसिंह, सिकन्दराराऊ, जिला–हाथरस (उ० प्र०)मोबा. 9411630343

(43)

जब धर्म के आधार पै हो गया बंटवारा,
बताओ क्यों हिन्दू को तुमने तड़फाया है?
सदैव सुविधायें दी मुस्लिम ईसाईयों को,
हिन्दू पर तो युगों से बुरा वक्त आया है।
सदियों से सिसका था अब भी सिसक रहा,
अयोध्या में मन्दिर भी नहीं बना पाया है।
राष्ट्रभक्त, हिन्दूभक्त पनपने नहीं दिये,
हिन्दुओं की गरदनों पै गड़सा चलाया है।

(44)

हे धूर्तो! कहते रहे हिन्दू साम्प्रदायिक है,
तुम्हारी इस चाल का देखो अन्त आयेगा।
तुम्हारो कर्मों से यह हिन्दू तो बचेगा नहीं,
निश्चित मुस्लिम इसे कच्चा ही खायेगा।
धूर्तो! धर्म निरपेक्ष बन खेला है खेल जो,
यही खेल तुम्हारा अन्त समय लायेगा।
यदि हिन्दू बच गया व संगठित हो गया,
फिर निश्चित ही तुम्हारा अन्त आयेगा।

(45)

धूर्तो! सत्ता के खेल में इतने माहिर हुए,
राष्ट्रधर्म, राष्ट्रप्रेम जाने कहाँ खो गये।
धर्म निरपेक्षता की ऐसी ओढ़ी चुनरिया,
ये हिन्दू ही हिन्द में निरीह बन रो गये।
बटवारे के बाद भी हिन्द ठगा सा देखता,
मुस्लिमों को पाक मिला और मजे हो गये।

www.thearyasamaj.org

भारती अभागी बन रो रही है भारत में,
गाँधी और नेहरू ही विष बीज वो गये।

(46)

हिन्दुत्व व राष्ट्रप्रेम और भारती का मान,
धूर्तो बताओ क्यों तुमने दूर कर दिये?
यह सत्ता सुख ही क्या सबसे बड़ा सुख है।
धूर्तो! क्या सत्ता ने इतने क्रूर कर दिये?
ये अधर्मी राष्ट्रघाती जितने भी हैं गद्दार,
वो सत्ता सुख ने ही चश्मे नूर कर दिये।
हिन्दू होके हिन्दू से ही करने लगे गददारी,
किस दुष्ट आत्मा ने मजबूर कर दिये?

(47)

हिन्दू एक होने की जरा भी करे कोई बात,
धूर्तो! बताओ तुम, क्यों नानी मर जाती है?
हिन्दू के जागरण से हो जाते हताश तुम,
सत्ता सुख देने वाली नानी मर जाती है।
इस हिन्दुत्व हुंकार की कोई भी आवाज हो,
क्यों तुम्हारी सत्ता की कहानी मर जाती है?
जातियों की राजनीति में तुम माहिर बनो,
हिन्दू शब्द आते क्यों जबानी मर जाती है?

(48)

धर्म निरपेक्ष तागतो, सदा इकट्ठी रहो,
हे धूर्तो! धूर्तता का यही असली नारा है।
अपनी जाति और मुस्लिमों को करके तुष्ट,
हिन्दू को चीर चीर तुमने सदा मारा है।
राष्ट्र चाहे बंट जाय, हिन्दू चाहे मिट जाय,
हे धूर्तो! तुम्हारा तो सदा बुलन्द तारा है।
तुम! नेहरू की तरह ही सत्ता का खेलो खेल,
काश्मीरी ब्राह्मण चाहे डोले मारा मारा है।

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

'वेद, धर्म व विज्ञान का स्रोत, प्रेरक व पोषक होने से भविष्य का सर्वग्राह्य धर्म'

लेखकः मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (उत्तराखण्ड)

आज का युग आधुनिक युग है। यह आधुनिक युग बौद्धिक उन्नति, विज्ञान की खोजों एवं उसके अनुसार जीवनयापन करने के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया है। विज्ञान में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षित व्यक्ति ही ज्ञानी हो सकता है और ज्ञानी व्यक्ति ही विज्ञान को जान कर उसका विकास, उन्नति, विस्तार व उसका सदुपयोग कर सकता है। **आधुनिक समय में विज्ञान ने जो स्थिति प्राप्त की है उसका अधिकांश श्रेय यूरोप व पश्चिम के लोगों को जाता है और सारा संसार उनका ऋणी है।** पिछले दो चार सौ वर्षों में उन्होंने विज्ञान को बुलन्दियों पर पहुंचा दिया। यद्यपि आधुनिक विज्ञान का विकास व विस्तार पश्चिमी देशों के लोगों ने किया है, जो प्रायः ईसाई मत के अनुयायी थे, फिर भी हिन्दू, मुस्लिम व अन्य मत के लोगों ने, विज्ञान की उन धारणाओं व मान्यताओं को बिना ननुनच के स्वीकार कर लिया। धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं के क्षेत्र में तो यह सहयोग अद्यावधि संभव ही नहीं हो सका है। सभी जानते हैं कि सामिष भोजन कई दृष्टियों से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है तथापि वह इसको छोड़ने के लिए तत्पर नहीं है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी तर्क व बुद्धि की कसौटी पर सत्य पाया गया है परन्तु उसे भी वेदेत्तर मत स्वीकार नहीं करते। ईश्वर का स्वरूप भी लें, तो यह जैसा वेदों, उपनिषदों व दर्शनों से प्राप्त होता है, वैसा सारे संसार के साहित्य में नहीं है। यही बुद्धि, तर्क व सत्य की कसौटी पर प्रमाणित होता है फिर भी इस सत्य को भी अन्य मतावलम्बी स्वीकार नहीं करते और अपने अपने अप्रमाणित मत को ही मानते आ रहे हैं। विज्ञान की बातों का सभी मतावलम्बियों द्वारा स्वीकार किया जाना इस कारण से है कि एक तो उनके अपने मतों के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक मान्यताओं से अधिक टकराव नहीं होता, अधिक तब होता जब वहां विज्ञान विषयक मुख्य-मुख्य बातें होती, जब या तो हैं ही नहीं या गौण रूप में हैं, तो फिर टकराव का प्रश्न ही नहीं है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि क्योंकि विज्ञान सत्य मान्यताओं का नाम है और सत्य मान्यताओं से मनुष्यों का जीवन सुखी होता है, अतः स्वार्थ व लोगों के जीवन के सुख के कारण भी सभी लोग इसे स्वीकार कर लेते हैं और यह भूल जाते हैं कि विज्ञान की वह मान्यता किसी ईसाई वैज्ञानिक ने खोजी है या मुस्लिम या किसी अन्य ने।

जिस प्रकार विज्ञान के सिद्धान्त सर्वमान्य एवं सबके लिए लाभकारी है उसी प्रकार धर्म की दृष्टि से वेदों एवं वैदिक साहित्य के सिद्धान्त ईश्वर प्रदत्त हैं, साक्षात्कृतधर्मा एवं तत्ववेता ऋषियों व मनीषियों आदि के द्वारा परीक्षित हैं एवं इनके सत्य पाये जाने के कारण शत-प्रतिशत यथार्थ हैं। इस कारण यह सारी दुनियां के लोगों के लिए समान रूप से लाभकारी, माननीय एवं जीवन में धारण एवं आचरण करने योग्य

www.thearyasamaj.org

हैं। परन्तु, क्योंकि वेदतरर मत के लोगों के अपने अन्य-अन्य विचार, मान्यतायें एवं सिद्धान्त हैं अतः उन्हें डर है कि वेदाध्ययन करने और वेदों में निहित सत्य सिद्धान्तों व मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते। **दूसरा कारण आर्यसमाज के विद्वानों एवं नेताओं की अपनी खामियां एवं दोष हैं जिस कारण वेदों का जितना प्रचार व प्रसार अपेक्षित था, वह नहीं किया गया है। वेदों के प्रचार प्रसार में कमियां रही हैं व अब भी हैं।** सम्प्रति आर्यसमाज की इकाईयां, प्रतिनिधि सभायें पद व प्रतिष्ठा से जुड़े विवादों के कारण संगठन की दुर्बलता के रोग से ग्रसित हैं। यह विचारणीय है कि वैदिक मत के सिद्धान्तों के पालन में वेदानुयायी को मुख्यतः क्या लाभ होता है जो अन्य मत के सिद्धान्तों को मानने से प्राप्त नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में मुख्य लाभ तो वैदिक धर्म में बार-बार के जन्म-पुनर्जन्म से छुट्टी ही नहीं मिलती अपितु ईश्वर का सान्निध्य एवं ईश्वर का आनन्द, जो संसार के सभी लौकिक सुखों से कहीं अधिक है, प्राप्त होता है। वेद के अनुचान विद्वानों, जो सत्य व असत्य, ज्ञान व अज्ञान, विद्या व अविद्या, पौरूषेय रचना का अन्तर यथार्थ रूप से जानते हैं, का स्पष्ट एवं तार्किक मत है कि बिना सात्विक भोजन, यम-नियमों का पालन, यथार्थ रीति से योगाभ्यास, ध्यान, तप, ईश्रोपासना, ईश्वर प्रणिधान, यज्ञ व अग्निहोत्र आदि कार्यों को किए बिना मुक्ति असम्भव है। **हम समझते हैं कि अन्य मत के लोग स्वयं को सत्य का आग्रही, सत्य का अनुगामी एवं सत्याचारी नहीं कह सकते क्योंकि न तो वह वैदिक मत के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं और न ही सत्यासत्य के निर्णय एवं सत्य को स्वीकार करने के लिए विवादित विषयों पर शान्तिपूर्वक वार्तालाप या शास्त्रार्थ के लिए तत्पर ही होते हैं।**

> विज्ञान के सिद्धान्त सर्वमान्य एवं सबके लिए लाभकारी है उसी प्रकार धर्म की दृष्टि से वेदों एवं वैदिक साहित्य के सिद्धान्त ईश्वर प्रदत्त हैं, साक्षात्कृतधर्मा एवं तत्ववेता ऋषियों व मनीषियों आदि के द्वारा परीक्षित हैं एवं इनके सत्य पाये जाने के कारण शत-प्रतिशत यथार्थ हैं। इस कारण यह सारी दुनियां के लोगों के लिए समान रूप से लाभकारी, माननीय एवं जीवन में धारण एवं आचरण करने योग्य हैं। परन्तु, क्योंकि वेदतरर मत के लोगों के अपने अन्य-अन्य विचार, मान्यतायें एवं सिद्धान्त हैं अतः उन्हें डर है कि वेदाध्ययन करने और वेदों में निहित सत्य सिद्धान्तों व मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते।

वेदों में ऐसा क्या है कि जिस कारण अन्य मतावलम्बियों को वेदों एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन कर अपने वेद से भिन्न सिद्धान्तों को छोड़कर वेदों के सिद्धान्तों व मान्यताओं को स्वीकार कर लेना चाहिये? इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि वेद इस ब्रह्माण्ड व समस्त सृष्टि को एक सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रेरित, प्रादुर्भूत, निर्मित, रचित व संचालित मानते हैं जबकि अन्य किसी मत में ईश्वर का ऐसा स्वरूपवर्णित नहीं है। महर्षि दयानन्द ने इसका

> वेदों में ऐसा क्या है कि जिस कारण अन्य मतावलम्बियों को वेदों एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन कर अपने वेद से भिन्न सिद्धान्तों को छोड़कर वेदों के सिद्धान्तों व मान्यताओं को स्वीकार कर लेना चाहिये? इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि वेद इस ब्रह्माण्ड व समस्त सृष्टि को एक सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रेरित, प्रादुर्भूत, निर्मित, रचित व संचालित मानते हैं जबकि अन्य किसी मत में ईश्वर का ऐसा स्वरूप वर्णित नहीं है।

www.thearyasamaj.org

सरलीकरण कर लिखा है कि **ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। जहां तक हमारा ज्ञान है, दुनिया के किसी भी मत व सम्प्रदाय में ईश्वर के निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अजन्मा, अनन्त आदि स्वरूप की कल्पना ही नहीं की जा सकी जिससे वह मत ईश्वर के सत्य स्वरूप के वर्णन में विद्या व ज्ञान की दृष्टि से बहुत पीछे हैं।** तर्क व प्रमाणों से भी ईश्वर का वेद–सम्मत–स्वरूप ही सत्य सिद्ध होता है। जितना विशाल ब्रह्माण्ड है, वह सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ व सर्वान्तरयामी स्वरूप वाले ईश्वर से ही प्रादुर्भूत होना सम्भव है, अन्य मनुष्य जैसी स्वरूप–वाली किसी अन्य चेतन सत्ता से तो सृष्टि की रचना व पालन हो ही नहीं सकता। दूसरा कारण है कि वेद सृष्टि के आरम्भ में उस सृष्टिकर्ता से ही आविर्भूत हुए हैं। वेद किसी एक व्यक्ति एवं व्यक्ति–समूह द्वारा रचित व निर्मित नहीं है। वेदों की जो भाषा, इसके शब्द व पदों की मौलिकता, सरलता व अर्थों की गम्भीरता एवं व्याकरण की उत्कृष्टता आदि जो उल्लेखनीय गुण हैं वह इसे अपौरूषेय सिद्ध करती हैं। **वेदों ने ही जीवात्मा को, चेतन तत्व, अजन्मा, अनादि, नित्य, स्वल्प परिमाण, एकदेशी, कर्मों का कर्ता व फलों का भोक्ता, जन्म–मरण व पुनर्जन्म को प्राप्त होने वाला बताया है और वेदवर्णित जीवात्मा का यह स्वरूप भी तर्क व प्रमाणों से सिद्ध है जबकि अन्य मतों में जीवात्मा का इस प्रकार से वर्णन व उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।** ईश्वर यदि वेदों में ज्ञान न देता तो जीवात्मा के नित्य, अजन्मा, अनादि, अमर, अविनाशी, सकाम कर्मों के कारण बन्धन में पड़कर जन्म व पुनर्जन्म को प्राप्त होने वाले, **इस जीवात्मा के इस स्वरूप की तो मनुष्यों द्वारा कल्पना ही नहीं की जा सकती थी।** मोक्ष का विचार, इसका स्वरूप व प्राप्ति के उपायों एवं मोक्षावस्था में जीवात्मा की स्थिति, मोक्ष से जीवात्मा की वापिसी आदि के बारे में जो वर्णन वेदों एवं वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है, वह दुनियां के किसी साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। यदि कहीं कुछ थोड़ा बहुत मिलता है तो वह अतीत काल में भारत से ही उन देशों में गया हुआ है, ऐसा सम्भव है और इसे मानने के अनेक कारण हैं। **यहां मनुस्मृति का श्लोक 'एतद्देशस्य प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।' प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।** वेद ही सर्वप्राचीन ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति, उसके 4 अरब 32 करोड़ वर्षों तक का जीवन या आयु और उसके बाद प्रलय का उल्लेख मिलता है जो कि बुद्धिसंगत एवं सत्य है। यह वर्णन सत्य इसलिए है कि वेदों ने सृष्टि की आयु 4.32 अरब वर्षों की बताई है जिसमें से 1,96,08,53,012 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यदि यह किसी मनुष्य की कल्पना होती तो वह कुछ सौ या हजार अथवा लाख वर्षों से अधिक की कल्पना नहीं कर सकता था जिसका कारण यह है कि मनुष्य की औसत आयु उन दिनों यदि लगभग 100 वर्ष की मान लें तो 20 से 100 वर्षों के बीच के लोग जो सृष्टि की आयु का अनुमान लगाते वह या तो इसे अनन्त बताते या फिर कुछ सौ, हजार या लाख वर्ष ही बता सकते थे। **अतः इस सृष्टि के सम्बन्ध में वेदों व वैदिक साहित्य की जो मान्यतायें हैं, वह सर्वथा युक्तिसंगत व प्रमाणिक है।**

www.thearyasamaj.org

वेद इस बात का भी सन्तोषजनक उत्तर देते हैं कि ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड की रचना क्यों की? पहला उत्तर तो ईश्वर सर्वशक्तिमान है और वह सृष्टि की रचना कर सकता है, इस कारण उसने सृष्टि की रचना की। दूसरा कारण है कि इस ब्रह्माण्ड में प्रलयावस्था में अंसख्य जीवात्मायें मूर्छित अवस्था में विद्यमान थे। उन्होंने प्रलय से पूर्व की सृष्टि के काल में जो कर्म किये थे, उनका सुख दु:ख के रूप में फल उनको दिया जाना था। यदि वह ऐसा न करता तो स्वयं निठल्ला सिद्ध होता और जीवात्माओं को उनके कर्मों का फल सुख–दु:ख के रूप में न मिल पाता और उसका अस्तित्व होकर भी न होने जैसा ही होता। इसके अतिरिक्त जन्म प्राप्त होने पर प्रत्येक जीवात्मा जब सुख में प्रवृत्त होता है, तो उसको उससे चार प्रकार के दु:ख मिलते हैं जो कि परिणाम–दुख, ताप–दु:ख, संस्कार–दु:ख, गुणवृत्तिविरोध–दुख कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त भी प्रत्येक जीवात्मा आध्यात्मिक, अधिदैविक एवं आधिभौतिक दुखों से सन्तप्त रहता है। उसको अविद्या, अभिनिवेश आदि क्लेश भी सदा सताते रहते हैं। अत: इनसे मुक्ति के लिए वह कुछ न कर पाता। इसी प्रकार से प्रकृति की भी सत्ता है परन्तु उससे सृष्टि की रचना न होने से उसका अस्तित्व होकर भी न होने जैसा होता अर्थात् ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का अस्तित्व होकर भी इन तीनों की सत्ता का होना निरर्थक होता। हम समझ सकते हैं कि यदि कहीं कोई डाक्टर रोगियों का उपचार न करे तो उसका होना निरर्थक होता है। अत: वेदों का सृष्टि की रचना का उद्देश्य भी तर्क व प्रमाण की कसौटी पर बुद्धिसंगत व स्वीकार्य श्रेणी में आता है एवं पूर्णतया पुष्ट है। अन्य मत वालों के पास सृष्टि रचना के उद्देश्य का ऐसा युक्तिसंगत उत्तर नहीं है। इसलिए भी बुद्धिमान मनुष्यों को वेदों को स्वीकार करना चाहिये।

–(शेष अगले अंक में)

महापुरुषों की जयन्ती

धनवन्तरि	1 नवम्बर
भाई परमानन्द	4 नवम्बर
चितरंजनदास	5 नवम्बर
विपिनचन्द्र पाल	7 नवम्बर
सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	10 नवम्बर
पं0 जवाहरलाल नेहरू	14 नवम्बर
गुरू नानक	17 नवम्बर
रानी लक्ष्मीबाई	19 नवम्बर
इन्दिरा गाँधी	19 नवम्बर
वीरांगना झलकारीबाई	22 नवम्बर
पट्टाभी सीतारमैया	24 नवम्बर

महापुरुषों की पुण्यतिथि

महर्षि दयानन्द सरस्वती	3 नवम्बर
महात्मा हंसराज	15 नवम्बर
विनोवा भावे	15 नवम्बर
शहीद करतारसिंह	16 नवम्बर
लाला लाजपतराय	17 नवम्बर
जगदीशचन्द्र वसु (वनस्पति वैज्ञानिक)	23 नवम्बर
गुरू तेगबहादुर	24 नवम्बर
महात्मा ज्योतिवा फुले	28 नवम्बर

दीपावली पर्व 3 नवम्बर

सभी को हार्दिक शुभकामनायें

www.thearyasamaj.org

सत्यार्थ प्रकाश के विरोध में मुसलमानों का जुलूस

लेखक: प्रो0 उमाकान्त उपाध्याय, ईशावास्यम्, पी–30, कालिन्दी, कोलकाता

1985 ई0 में आर्यसमाज कलकत्ता की शताब्दी बड़े धूम–धाम से मनायी गयी। कोलकाता के प्रसिद्ध परेड ग्राउण्ड में शताब्दी का यह उत्सव कोलकाता के लिए अभूतपूर्व हुआ था। कोलकाता के मुसलमानों ने उस शताब्दी पर चार बार पुलिस की रेड करवाई थी किन्तु कोई आपत्तिजनक पुस्तक या सामग्री न मिलने से मुसलमानों के नेताओं में बड़ी खीझ थी। दूसरे वर्ष 1986 ई0 में सदा की तरह दिसम्बर के महीने के अन्तिम दिनों में 9 दिनों का वार्षिकोत्सव बड़ी सज–धज से मोहम्मद अली पार्क में मनाया जा रहा था। शताब्दी पर पुलिस की रेड इसलिए भी विफल हो गयी थी कि वहां रातों दिन हजारों व्यक्तियों का मेला लगा रहता था। इस अनुभव से शिक्षा लेकर सन् 1986 ई0 में अपरान्ह के समय पुलिस ने छापा मारा था।

मोहम्मद अली पार्क कहने को ही मोहम्मद अली नहीं है, इस पार्क के चारों ओर मुसलमानों की सघन बस्तियां हैं। कोलकाता की बड़ी मस्जिद प्रसिद्ध जामा पार्क से पैदल 5 मिनट की दूरी पर चितपुर रोड पर है। मस्जिद से निकलने पर सौ–पचास कदन चलने पर ही पार्क से माइक की आवाज सुनाई पड़ने लगती थी। उस समय आज की तरह माइक पर कोई प्रतिबन्ध न था। अतः मुसलमानी पाढ़ों में प्रातः यज्ञ पर वेद मंत्रों की ध्वनि और अपरान्ह भजन और व्याख्यान की आवाज घरों में बैठे–बैठे सुनाई पड़ती थी। कट्टर मुसलमानों में विरोध और खीझ की भावना बनी रहती थी।

आर्यसमाज कलकत्ता में स्त्री समाज का साप्ताहिक सत्संग प्रत्येक बुधवार को अपरान्ह 3–4 बजे होता रहता था। वार्षिकोत्सव के अवसर पर भी बुधवार को अपरान्ह में बुधवार के दिन 3–6 बजे तक महिला सम्मेलन मनाया जाता है। आज भी यही नियम चलता है। सन् 1986 के वार्षिकोत्सव में बुधवार के दिन महिला सम्मेलन मनाया जा रहा था। महिला सम्मेलन में सुरक्षा और व्यवस्था की दृष्टि से 15–20 पुरुष अधिकारी और स्वयंसेवक उपस्थित रहते थे। शेष पुरुषों की उपस्थिति महिला सम्मेलन में वर्जित रहती थी। पुस्तक विक्रेता तो अपनी–अपनी पुस्तकों की दुकान खोल देते हैं किन्तु संख्या की दृष्टि से पुरुष बहुत कम रहते हैं।

मुसलमानों की ओरसे कोलकाता महानगर के मुख्य हेड क्वार्टर (प्रधान कार्यालय) लाल बाजार में मुसलमानों की ओर से उच्च अधिकार सम्पन्न राजनीतिक और धार्मिक नेताओं ने पुलिस कमिश्नर के यहां यह शिकायत कर रखी थी कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' एक प्रतिबंधित (Banned) पुस्तक है। कमिश्नर ने बिना कोई जांच–पड़ताल किये वह शिकायत स्थानीय ओ0 सी0 (O.C.) को भेज दी। शिकायत इतने सबल और ऊंचे सूत्र से थी कि ओ0 सी0 ने कार्यवाही

www.thearyasamaj.org

करना अनिवार्य समझा। ओ0 सी0 स्वयं भी मुसलमान थे, शायद उनके मन में भी मजहबी भावना काम कर रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। बुधवार के दिन अपरान्ह में केवल स्त्रियां होती हैं, भीड़ कम होती है और पुस्तकों की दुकानें खुली रहती हैं। इस सुयोग का लाभ उठाकर ओ0 सी0 ने दस-बारह पुलिस के साथ पार्क में पुस्तकों की दुकानों पर छापा मारा और सत्यार्थ प्रकाश की जो भी प्रतियां हिन्दी, बंगला, उर्दू में उन्हें मिल सकीं उसे उठा ले गये। जनता में क्षोभ होना बहुत स्वाभाविक था, अधिकारियों को फोन से सूचना दी गई, हमें भी घर पर फोन आया। आधे घण्टे के अन्दर हमारे पास भी कम से कम आठ-दस फोन आ गये। हमने लोगों को सलाह दी कि हम पार्क में आ रहे हैं और उचित कार्यवाही करने पर विचार करेंगे।

संयोग से स्थानीय विधायक (M.L.A.) स्वर्गीय देवकीनन्दन पोद्दार थे। श्री पोद्दार जी 3-4 पीढ़ियों के स्वयं भी आर्यसमाजी परिवार के थे। कोलकाता का यह पोद्दार परिवार आर्यसमाज का प्रसिद्ध सहयोगी रहा है और इस पोद्दार परिवार के 5-6 घरों में हमें व्यक्तिगत रूप से गुरु, आचार्य का सम्मान मिलता रहा है। मैंने श्री देवकीनन्दन पोद्दार जी को टेलीफोन किया और उन्हें सारा समाचार बता दिया। मैंने उनसे यह भी कहा कि आप पुलिस कमिश्नर को फोन करें और हमारे साथ एक शिष्ट मण्डल में आप भी हमारी सहायता के लिए पुलिस कमिश्नर के पास आर्यसमाज के शिष्ट मंडल में लाल बाजार चलें। उन्होंने पुलिस कमिश्नर से शिष्ट मण्डल के मिलने का समय ले लिया और हम चार-पांच व्यक्ति पोद्दार जी के साथ पुलिस कमिश्नर से मिलने चले गये। स्वर्गीय देवकीनन्दन पोद्दार प्रतिष्ठित विधायक थे और वे हमारे साथ शिष्ट मण्डल में थे इस प्रकार हमारे शिष्ट मण्डल का वजन पर्याप्त बढ़ गया था।

हम जब पुलिस कमिश्नर के आफिस में पहुंचे तो उन्होंने तुरन्त ही बुला लिया और जिस ओ0 सी0 ने छापा मारा था वह भी वहीं थे। पुलिस कमिश्नर ने बड़े सम्मान से हमें बैठा लिया और बातचीत कुछ इस प्रकार आरम्भ हुई। पुलिस कमिश्नर ने पूछा-यह पुस्तक कितनी पुरानी है? हमने कहा इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 1875 ई0 में निकला था, इस प्रकार एक सौ वर्षों से पुरानी पुस्तक है और सभी प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है और आज तक कई लाख प्रतियां छप चुकी हैं। पुलिस कमिश्नर ने पूछा क्या पुस्तक पर कभी कोई प्रतिबंध (बैन) लगा है? हमने उत्तर दिया अंग्रेजों के राज्य में अंग्रेजों ने चेष्टा तो कई बार की किन्तु अदालतों ने सदा ही पुस्तक को प्रतिबंध के योग्य नहीं माना। अब ओ0 सी0 ने कहा कि सिन्ध में तो कुछ हुआ था। हमने कहा कि स्वतंत्रता मिलने के समय सिन्ध की मुस्लिम लीगी सरकार ने प्रतिबंध का शोर तो मचाया था किन्तु जब आर्यसमाज के नेता कराची की सड़कों पर सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तक लेकर खुलेआम घूमने लगे तो सिन्ध सरकार ने घोषणा कर दी कि हमने तो कोई प्रति-बंध ही नहीं लगाया है। कांग्रेस के केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों ने भी कहा कि सत्यार्थ प्रकाश पर कोई प्रति-बंध नहीं है। अब ओ0 सी0 ने कहा कि स्वामी जी ने आलोचना तो बड़ी कठोर की है। हमने उत्तर दिया

www.thearyasamaj.org

कि स्वामी जी ही क्यों, संसार के इतिहास में चाहे हजरत मोहम्मद हों या यीसू मसीह हो चाहें स्वामी विवेकानन्द हों, जिसने भी सुधार का काम किया है। उसे बुराइयों का विरोध करना ही पड़ता है। एक भी धार्मिक नेता या सुधारक नहीं हुआ है जिसने बुराइयों का विरोध न किया हो। अब पुलिस कमिश्नर ने कहा कि क्या आप यह भरोसे से कह सकते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश पर कभी प्रतिबंध नहीं लगा है? हमने दृढ़ता के स्वर में कहा कि हम लिखित दे सकते हैं कि इस पुस्तक पर सौ से अधिक वर्षों में संसार की किसी भी अदालत ने भारतवर्ष में, यूरोप के देशों में, अमेरिका के देशों में या इस्लामी देशों में कहीं भी प्रति-बंध नहीं लगा है। **अब पुलिस कमिश्नर ने पूछा कि क्या सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाज का धर्म ग्रन्थ है? मैंने कहा–हां, यह हमारा धर्म ग्रन्थ है। इतना कहते ही स्वर्गीय देवकीनन्दन पोद्दार बड़े बलशाली ढंग से बोले–'चार पीढ़ियों का आर्यसमाजी तो मैं हूँ और सत्यार्थ प्रकाश हमारा भी धर्म ग्रन्थ है।' (पोद्दार जी के शब्द मुझे याद हैं) पुलिस कमिश्नर का रुख नरम हो गया उसने फिर पूछा कि क्या यह आपका धर्मग्रन्थ है? हमने उत्तर दिया हमारे सत्संगों में सत्यार्थ प्रकाश की कथा होती है, साप्ताहिक सत्संग में आर्यसमाज में सत्यार्थ प्रकाश का पाठ और कथा अनिवार्य है।**

अब पुलिस कमिश्नर ने ओ0 सी0 से कहा कि पण्डाल से पुस्तकों का उठा लाना उचित नहीं है, पुस्तकें लौटा दो। ओ0 सी0 ने कहा–बहुत ऊँचे सोर्स से मांग हुई है और जनता में बवेला हो जायेगा। पुलिस कमिश्नर ने कहा कि सोर्स की बात तो तुम मुझ पर छोड़ दो और जनता के बवाल की क्या चिन्ता है? नहीं माने तो उन्हें ठण्डा कर दो। अब पुलिस कमिश्नर ने कहा कि पुस्तकें इन्हें लौटा दो और हमसे बोले कि पुलिस की भूल है, आप पुस्तकें ले जाइए। हमने कहा कि हम पुस्तकें पुलिस के आफिस में नहीं लेंगे। हमारी पुस्तकें हमारे पाण्डाल से उठायी गयी हैं और हम वही पार्क में पुस्तकें वापस लेंगे। ओ0 सी0 ने कहा कि जनता भड़क उठे तो? हमने उत्तर दिया कि जनता को शान्त अनुशासन में रखने का उत्तरदायित्व हमारा है। पुलिस कमिश्नर ने कहा कि इन्हें पुस्तकें पार्क में लौटाई जायें और हमें बड़े सम्मान से विदा किया। हम इस सुन्दर समाचार के साथ अपने पण्डाल में लौट आये।

सायंकाल के समय कोई साढ़े सात–आठ बजे का समय रहा होगा। सारा पाण्डाल और सारा पार्क लोगों से भरा हुआ था, और हमने स्टेज के ऊपर पुस्तकें वापस लीं और जनता में जयघोष होने लगा। सत्यार्थ प्रकाश अमर रहे, स्वामी दयानन्द जी की जय, आर्यसमाज अमर रहे।

हमने जनता को शांत किया। हम स्वयं बोल रहे थे, हमने पुलिस को धन्यवाद दिया, कि पुलिस फोर्स शांति व्यवस्था का संरक्षक है हमने पुलिस को धर्म का रक्षक सुव्यवस्था का रक्षक कहा था। हमारा अनुमान है कि जो पुस्तकें लेकर आये थे वे सब हिन्दू समुदाय के ही थे और पीछे वे हमसे अलग से भी मिले थे और अनुकूल आश्वासन देकर गये थे।

जनता में जोश उबाल खा रहा था, बड़े जोशीले भजन उपदेश हुए और जलसे के शेष दिन बड़े उत्साह और जोश के साथ बीते।

❋❋❋

www.thearyasamaj.org

वृहद विमान शास्त्र
शकुन विमान

लेखक: कृपालसिंह वर्मा, 253 शिवलोक, कंकरखेड़ा, मेरठ (उ0 प्र0) मोबा. 9927887788

किसी प्राचीन किले के खण्डहरों को देखकर ही उसकी भव्यता का आभास हो जाता है। सन् 1918 में पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्रजक को राजकीय संस्कृत पुस्तकालय बड़ौदा से महर्षि भरद्वाज द्वारा सूत्र रूप में रचित "यन्त्र सर्वस्व" ग्रन्थ के वैमानिक प्रकरण के कुछ पन्नों की Transcript copy मिली जिसको स्वामी जी ने 'बृहद् विमानशास्त्र' का नाम दिया। इस पुस्तक का श्लोकबद्ध भाष्य यति बोधानन्द ने किया था। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद स्वामी जी ने 19-09-1958 ई0 को पूर्ण किया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ने इस पुस्तक को फरवरी 1959 ई0 को प्रकाशित किया।

वृहद् विमान शास्त्र के पेज 241 से 252 तक शकुन विमान का वर्णन है। शकुन विमान एक यान्त्रिक विमान है। यह विभिन्न प्रकार के यंत्रों से संचालित होता है। इसके अतिरिक्त वैदिक विज्ञान में दो प्रकार के विमान और हैं वे हैं-1-मान्त्रिक विमान 2-तान्त्रिक विमान। मान्त्रिक विमान मान्त्रिक यन्त्र (Remote Control) से संचालित किये जाते हैं। तान्त्रिक विमान विद्युत तन्त्रिकाओं (Electric wires)से संचालित किये जाते हैं।

इस विमान के सन्दर्भ में महर्षि भरद्वाज का सूत्र है-

'राजलोहादेते षामाकार रचना।।'' अ0 3 सू0 5।।

शकुन विमान को राजनामक लोहे से बनाना चाहिए। यह उष्मपा प्रशस्त (Melting on a very high degree at Temporature) लोहे में सर्वश्रेष्ठ है।

सोम, सौण्डाल, मौर्त्विक लोहों को सुहागे के साथ गलाने पर यह प्राप्त होता है।

विधि- (i) इस लोहे से प्रथम पीठ (Base) का निर्माण करना चाहिए।

(ii) इसके पश्चात् नाल स्तम्भ (Pillor for appratuses) का निर्माण करना चाहिए।

(iii) कील चक्र (Liver for handling) लगाने चाहिए।

(iv) औष्मयक यंत्र (Oil Engine) लगाना चाहिए।

(v) वातनाल (Air Pipe) तथा जलावरणनाल लगाने चाहिए।

(vi) तैल पात्र (Oil Container) तथा वातप तन्त्रीनाल(Tube like wires to give air to the engine)।

(vii) चुल्ली (Carborator) तथा विद्युत यन्त्र (Battery to give current to the carborator)

(viii) वात चोदन यन्त्र (Expellers)।

www.thearyasamaj.org

(ix) दिशा प्रदर्शक यन्त्र ।

(x) दो पंख (Two wings)।

(xi) विमान को ऊपर उठाने के लिए पुच्छ भज।

(xii) किरण का आकर्षण करने वाली मणियां (Different kinds of substances used to get solar engery)।

हाट साक्ष्य लोहे से नालस्तम्भ बनाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के यंत्रों को लगाने के लिए स्तम्भ बनाये जाते हैं।

पीठ (Base) ऊँचाई 80 बालिस्त, चौड़ाई 56 बालिस्त, दक्षिण और उत्तर भागों में पीछे वाले त्रिकोण भाग में ऊँचाई 70 बालिस्त त्रिकोण आकार युक्त शकुन विमान का आकार होना चाहिए।

श्लोक संख्या 41 में विमान के अति महत्वपूर्ण यंत्रों को निर्देशित किया गया है-

(श्लोक सन्धि विच्छेद करके लिखे हैं)

"वात पाचक तन्त्रीनाल: अथ: चुल्ली तथैव च।
विद्युत यन्त्र: च अथ वातचोदनाय यन्त्र एव च।। 41।।

वातपाचक तन्त्रीनाल (To provide passage for the air to the carborator) चुल्ली (carborator) विद्युत यंत्र (Electric Battery to provide current to for the carborator to creat sparks)

वात चोदनाय यंत्र- (Expellers to blow the air the air backward so that the plane may move forward)

पश्चात् शकुनयन्त्र: च तत् पक्ष द्वयम् एव च।। 42।।
विमान: उत्क्षेपण अर्थ तत् पुच्छ भाग: तथा एव हि।
तत: विमान संचार कारण: औष्म्यक यन्त्र।। 43।।

शकुन यन्त्र उसके 'पक्ष द्वयम्' अर्थात् दो पंख, विमान को ऊपर उठाने के लिए उसकी पुच्छ भाग तथा विमान संचार के लिए औष्मयक यन्त्र अर्थात् (Oil Engine) आवश्यक है।

विमानोभय पार्श्वस्थ पक्षयोरुभयोरपि।। 100।।

विमान के दोनों पार्श्वों में दो दृढ़ पंख होने चाहिए।

प्रशरण आघात क्रिया सिद्धि अर्थ च तथैव हि।। 101।।
स्वानुकूल यथा तत्र कीलका: स्थापिता: तथा।। 102।।

पंखों के प्रसारण आघात आदि सिद्धियों के लिए कीलक अर्थात् Controlling Livers होने चाहिए।

विमानस्य पुरोभाग स्थित पंख भ्रमाय हि।। 102।।
शलाका नाल मध्यस्था योजिता: च औष्म्ययन्त्रके।। 103।।

-शेष पृष्ठ सं. 31 पर

www.thearyasamaj.org

मेरी अपनी कुछ मान्यताएँ

लेखक: खुशहालचन्द्र आर्य, महात्मा गांधी रोड, दो तल्ला, कोलकाता

सुधी पाठकों से मेरा एक विनम्र निवेदन है कि कुछ विषयों पर मेरी स्वयं की कुछ मान्यताएँ हैं, जो मेरे ही मस्तिष्क की उपज है। जिनको मैं इस लेख में उद्धृत करता हूँ। आशा है पाठकगण मेरी इन मान्यताओं से सहमत होंगे। यदि न हों तो कृपया आप विरोध प्रकट करें ताकि वाद-विवाद द्वारा किसी निर्णय पर पहुँच सकें। वे विषय इसी भाँति हैं-

1- **वेद केवल मनुष्यों के लिए ही हैं-**

काफी व्यक्ति कह देते हैं कि वेद, ईश्वरीय ज्ञान है इसलिए ईश्वर का सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में विद्यमान है। पर यह कहना गलत है। कारण ईश्वर ने वेदों को केवल मनुष्यों के लिए ही बनाए हैं। मनुष्यों को अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचने के लिए उसे क्या काम करने चाहिए और क्या काम नहीं करने चाहिए जिससे वह अपने स्वयं को सुखी व प्रसन्न बना सके साथ ही दूसरों के जीवन को भी अपने जीवन के समान ही बनाते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। यह सब ज्ञान सृष्टि के आदि में चार ऋषियों द्वारा जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य व अंगीरा थे, उनके मुख से चार वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद क्रमशः उच्चारित करवाए। वैसे तो ईश्वर का ज्ञान अनन्त और अपार है। पर ईश्वर ने वेदों में उतना ही ज्ञान दिया है जितना मनुष्य को आवश्यकता है। जैसे दसवीं कक्षा के विद्यार्थी को दसवीं कक्षा के कोर्स की ही पुस्तकें अध्यापक पढ़ाता है, जिनको पढ़कर वह दसवीं कक्षा की परीक्षा में अच्छी प्रकार उत्तीर्ण हो सके। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अध्यापक को भी उतना ही ज्ञान है। अध्यापक में तो बी. ए. व एम.ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाने की भी योग्यता है पर दसवीं वालों को वह अध्यापक दसवीं कक्षा के कोर्स की ही पुस्तकें पढ़ावेगा। इसी प्रकार ईश्वर में तो अनन्त और अपार ज्ञान है। वह तो पूरे ब्रह्माण्ड को सुचारू रूप से चलाता है। सृष्टि की उत्पत्ति, संचालन व विनाश भी करता है। साथ ही प्रलय व मोक्ष को उनकी अवधि के अनुसार चलाता है और जीवों के कर्म फलों को भी अपनी न्याय व्यवस्था के निष्पक्ष भाव से देता है। इस अथाह ज्ञान की मनुष्यों को कोई आवश्यकता नहीं। यह ज्ञान तो ईश्वर के लिए ही जरूरी है। इसलिए ईश्वर ने वेदों में उतना ही ज्ञान दिया है जितना मनुष्यों को आवश्यकता है। इससे अधिक ज्ञान ईश्वर ने वेदों में नहीं दिया।

2- **जब जीव मनुष्य देह छोड़ता है, तभी उसको आगे मिलने वाली योनियों का निर्धारण हो जाता है-**

मनुष्य योनि से जब जीव जाता है, तब उसकी तीन गतियां हो सकती हैं। पहली गति जो मनुष्य अपने जीवनभर स्वार्थ का काम न करके निष्काम कर्म करता है यानि परोपकार करता है और जो अपने जीवन में ही समाधि तक पहुँच जाता है, वह जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में वह 31

www.thearyasamaj.org

नील 10 खरब 40 अरब वर्ष तक ईश्वरर के सान्निद्ध में रहते हुए परम आनन्द को प्राप्त करता रहता है। यह जीव की सर्वोत्तम गति है। दूसरी गति मनुष्य शरीर में जो जीव अपने जीवन में पच्चास प्रतिशत या इससे अधिक शुभ कर्म करता है, उसे अगली योनि भी मनुष्य की ही मिलती है। जीव जितने प्रतिशत शुभ कर्म अधिक करेगा, उसको उतनी ही अच्छी सुखदायक मनुष्य योनि मिलेगी। इसको मध्यम गति कहते हैं। तीसरी गति जब जीव मनुष्य शरीर में पच्चास प्रतिशत से अधिक अशुभ कर्म करेगा उसको उतनी ही निम्न कोटि की योनि वृक्षादि, इससे ऊपर कीट–पतंग और इससे ऊपर पशु–पक्षी की मानी जाती है। यह जीव की निकृष्ट गति है। इस गति में जब जीव मनुष्य शरीर छोड़ता है तब वह कितनी निम्न योनियों से होकर पुनः मनुष्य योनि में आवेगा, इसका निर्धारण मनुष्य योनि छोड़ते समय ही हो जाता है कारण मनुष्य छोड़कर बाकी सब योनियां केवल भोग योनियाँ हैं। इनमें जीव को उसके किये अच्छे बुरे कमों का फल उसे नहीं मिलता। इसीलिए इनको भोग योनियाँ कहा जाता है। मनुष्य योनि से जब जीव पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि निम्न योनियों में जाता है, तो वह सबसे पहले अपने सबसे अधिक किये हुए अशुभ कर्मों के फल के अनुसार सबसे अधिक निम्न योनि वृक्षादि योनि में जाता है। फिर वह उन्नति करता हुआ ऊँची योनियाँ प्राप्त करता रहेगा। जब उसके पच्चास प्रतिशत या इससे अधिक अशुभ कर्मों का फल मिल चुकेगा तब वह जीव पुनः साधारण मनुष्य योनि में आ जायेगा और फिर यहाँ से उसकी दूसरी यात्रा आरम्भ हो जायेगी। इस विषय पर मैंने कई वैदिक विद्वानों व अपने ही स्वाध्यायशील साथियों से विचार विमर्श किया। सभी ने कहा कि मनुष्य योनि से जब जीव अपने किये बुरे कर्मों के अनुसार एक बार तो वह निम्न योनियों में जाता है, उसके पश्चात् उस निम्न योनि से आगे किस योनि में जायेगा, यह ईश्वर की इच्छा के अधीन है। यह विषय मनुष्य के विचारने का नहीं। परन्तु मेरा विचार यह है कि ईश्वर अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम नहीं करता। वह जो भी काम करता है उसका कोई आधार अवश्य होता है, इसलिए आधार यही है कि जीव, मनुष्य योनि में ही जो अच्छे बुरे कर्म किये, उसी के आधार पर ईश्वर उस जीव को कितनी आगे की निम्न योनियाँ देगा, यह भी मनुष्य शरीर छोड़ते समय ही निश्चित कर देता है। उसी आधार पर जीव आठ–दस या इससे भी कम–अधिक निम्न योनियों में होकर पुनः वही जीव मनुष्य योनि में आ जाता है। यही बात तर्क संगत लगती है।

3– गाय की योनि मनुष्य की योनि से पहले की योनि होती है–

मेरा लिखने का तात्पर्य यह है कि जीव जब मनुष्य शरीर छोड़ता है तो वह अपने निम्न कोटि के किये के अनुसार पहले वह जीवों की निम्न श्रेणी वृक्षादि योनियों में जाता है। फिर वह मनुष्य योनि में ही किये कर्मों के अनुसार ऊँची योनियों को प्राप्त करता रहेगा और मनुष्य योनि में आने से पहले वह गाय की योनि में आयेगा। फिर वह गाय से मनुष्य योनि में आयेगा। यानि गाय, मनुष्य की सबसे नजदीक की योनि है। इसलिए गाय, मनुष्य के पड़ौस की योनि हो गई। जिस प्रकार, पड़ौसी सबसे नजदीक होने से, उससे अधिक प्यार होता है और वे दोनों एक–दूसरे के दुःख–सुख के भागीदार होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि वह गाय से सबसे अधिक प्यार करे और उसको कसाईयों के हाथों से मरने से बचाये, तभी मनुष्य पड़ौसी होने के कर्त्तव्य का निर्वहन कर सकेगा। गाय का स्वभाव और उसकी उपयोगिता को देखकर

www.thearyasamaj.org

ही मेरा यह विचार बना है कि गाय से ही जीव मनुष्य योनि में आता है।

4– स्वार्थ की परिभाषा–

हम स्वार्थी उसी को कहते हैं जो दूसरों के काम नहीं आता हो और केवल अपने ही लाभ की सोचता हो। उसे हम स्वार्थी कहते हैं परन्तु वह न तो स्वार्थी है और न ही परमार्थी है, बल्कि वह एक दम मूर्ख है जो अपने हितों को न समझकर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है। स्वार्थी वही होता है जो अपने हित की सोचे और वही काम करे जो उसके हित में हो। सच पूछो तो अपना हित अच्छे काम करने में है, जैसे सत्य बोलने में, ईमानदारी रखने में, किसी को धोखा न देने में, किसी का भला करने में है। यदि आप यह गुण अपनाओगे तो सभी आप के ऊपर विश्वास करेंगे, आपका सम्मान होगा और आप कहोगे लोग उसी को सत्य मानकर आपकी बात को स्वीकार कर लेंगे। आप जो भी व्यापार करोगे उसमें वृद्धि होगी और सफलता आपके पैर चूमेगी। यदि आप बेईमानी करोगे, झूठ बोलोगे, पक्षपात करोगे और आप किसी का बुरा करोगे तो आप सबकी नजर से गिर जाओगे। आप की बात का कोई विश्वास नहीं करेगा, तब आप कोई भी व्यापार करोगे, उसमें आपको असफलता ही हाथ लगेगी। इसलिए बुरे काम करने से आपका जीवन सुखी न बनकर दुःखी ही बनेगा। इस प्रकार आपने अपना हित न करके अहित किया। इसलिए आप स्वार्थी नहीं हुए। यदि आप स्वार्थी होते तो ईमानदार बनते, झूठ कभी नहीं बोलते, सदैव निष्पक्ष काम करते, परोपकार करते, तब आप अपने हितों की रक्षा करते और आप एक सच्चे स्वार्थी कहलाते। सब बातों का निष्कर्ष यही है कि अच्छे काम करना ही मनुष्य के हित में और बुरे काम करना अहित में है इसलिए सच्चा स्वार्थी वही है जो अच्छे काम करता है और बुरे कर्मों से दूर रहता है।

❁❁❁

पृष्ठ सं. 28 का शेष–

विमान के सामने वाले भाग में स्थित पश्व चक्र (Expeller) को घुमाने के लिए शलाकानाल के मध्य औष्म्यक यन्त्र अर्थात् (Oil Engine) होना चाहिए।

"तैल प्रज्वलनार्थाय दीपचुल्ली प्रतिष्ठिता।। 21।।

"तस्मिन् दीप प्रतिष्ठार्थ अग्नि उत्पत्ति अर्थम् एव तु।

विद्युत यन्त्रं स्थापित स्यात् कीलकैः सुदृढ़ यथा।। 22।।

तेल को जलाने के लिए इंजन के अन्दर दीपचुल्ली अर्थात् एक (carborator)लगाना चाहिए तथा अग्नि की उत्पत्ति अर्थात् (Spark)के लिए विद्युत यंत्र अर्थात् एक (Electric Battery) लगानी चाहिए। पंखों को क्रम से ऊपर नीचे झुकाने, पूंछ भाग को ऊपर जाने के लिए झुकाने, तैल पात्र के आयतन आदि का सटीक वर्णन किया गया है।

चक्राणी भूसंचार योगयनि सन्धारितानि हि।

एवं शकुन यन्त्रस्य रचनाविधिरीतिम्।। 40।।

विमान के चारों दिशाओं में यथाविधि 7 बालिस्त गोल आकार वाले चक्र भूमि पर संचार करने के लिए लगाये जायें। इस प्रकार शकुन विमान की रचना विधि कही है। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

आर्यों की भावनात्मक एकता

राष्ट्र की आत्मा उसकी संस्कृति है, जो महान् प्रवृत्तियों, उदात्त भावनाओं एवं उन्नत आदर्शों में निहित है। इस दृष्टि से वेद हमारी संस्कृति के महान परिचायक हैं। उनमें सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्यों का प्रतिपादन है, जिन की महत्ता प्रत्येक युग एवं राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर है। वैदिक साहित्य में राष्ट्र के स्वरूप, भावनात्मक एकता एवं मानवीय भावों की जो अभिव्यक्ति है वह भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है। इस महिमा का द्योतक ऋषिका यह उद्गार है–

संगच्छध्वं सवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सं जा नाना उपासते।। –(ऋ. 10.191.2)

–हे मानव ! तुम परस्पर स्नेह से एक ही मार्ग पर चलो, सद्भाव से बोलो। भावनात्मक रूप से एक होकर जीवन बिताओ–जिस प्रकार देवता इस निखिल विश्व का संचालन करते हैं।

वस्तुतः कोई भी प्रजा अपना राष्ट्र–धर्म और ऐक्य–भाव छोड़कर जीवित नहीं रह सकती। अतः राष्ट्र और समाज की समृद्धि के लिए प्रत्येक कार्य को एकमत होकर ही करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का एक ही भाषा, एक ही प्रणाली तथा एक ही शासनअनुशासन में संगठित रहना परम आवश्यक है।

सनानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।। –(ऋ. 10.191.3)

तुम सबका ध्येय समान हो, हृदय समान हो, सबका मन समान हो, जिससे तुम्हारी सब की शक्ति उत्तम हो।

समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। –(ऋ. 10.191.4)

–हे मानव! तुम हृदय से, मानसिक भावना से सर्वदा समान होकर रहो। इस एकता से ही तुम्हारे संघ, समिति तथा समुदाय की उन्नति हो सकेगी।

आज राष्ट्र में एकता की भावना कम होती जा रही है, अतः सहयोग की भावना का होना नितांत आवश्यक है–

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। –(ऋ. 6.75.14)

–एक दूसरे की सर्वदा रक्षा करना और सहायता करना मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य है।

मित्रास्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। –(यजु. 36.18)

–मैं समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ तथा सारा विश्व परस्पर मित्र–भाव से देखे।

www.thearyasamaj.org

'मित्र' का अर्थ सूर्य भी है। अतः हमें सूर्य की भाँति निष्पक्ष भाव से व्यवहार करना चाहिए। विश्व बंधुत्व की यह कितनी महान् और भव्य कल्पना है। इस मंत्र में मानव-मात्र को एक सूत्र में बांधने की भावना मुखरित है। हमारे ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को अपना देश माना है। भावनात्मक एकता को चाहने वाले ऋषि की उदात्त अन्तरात्मा से यह अपूर्व वाणी मुखरित हुई है-'तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः'। सचमुच यह अविभक्त एवं अखण्ड पृथ्वी ही प्राणिमात्र की माता है। अतः हम भाषा, देश, धर्म, जाति आदि के भेदभाव भूलकर सनातन काल से चली आने वाली भावनात्मक एकता को पुनरुज्जीवित करें, जहाँ मानव के प्रति मानव का सच्चा स्नेह हो और सभी नागरिक एक कुल, एक जाति होकर, विश्व एकात्मकता की भावना से रहें।

इस प्रकार आदिकाल से भावनात्मक एकता भारतवासियों का एक मात्र लक्ष्य रहा है। वैदिक साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति कितनी उदात्त एवं भव्य रूप से हुई है, विश्व के किसी दूसरे ऋषि कवि ने शायद ही इतने सुन्दर रूप से निवेदित की हो। कितनी महान् भावना, कितना ऊँचा लक्ष्य था हमारा जो समस्त मानव जगत् को समान रूप से अपना मानते थे।

आज देश में भावनात्मक एकता की चर्चा हो रही है, किन्तु सृष्टि के आदि ही हमारे ऋषि-मुनियों ने विश्वव्यापी अखण्ड एकता का उद्घोष किया था। आज हमें उसकी आवश्यकता है। अतः हमें स्वार्थ और सांप्रदायिक संकीर्णता के घेरों को तोड़कर उस आत्मतत्त्व-'आत्मवत् सर्वभूतानि' को पहचानना होगा, जो प्राणिमात्र में समान रूप से संचरित है। ❀❀❀

महर्षि दयानन्द सरस्वती

विज्ञान पाठ वेद पढ़ो, को पढ़ा गया।
विद्या-विलास विज्ञवरों का बढ़ा गया।
सारे असार पन्थ मतों को हिला गया।
आनन्द सुधासार दया का पिला गया।
अब कौन दयानन्द यति के समान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है।

हम ईश्वर से प्रेम कब करते हैं?

-जब हम दूसरों के सुख-दुःख को अपना मान कर उनकी अनुभूति से एक रूप हो जाते हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।

-जब हम अपने दुर्भाग्य की चिन्ता करने के बजाय यह अनुभव करते हैं कि दूसरे कितने लोगों की अपेक्षा हम अधिक भाग्यशाली हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।

www.thearyasamaj.org

मेरी ममता को ज्ञान मिले

–श्रीमती विद्यावती मिश्र

मृदु भावों की लोलुपता को
संयम की पावन शक्ति मिले,
सौरभ के प्यासे अन्तर को
चिर शान्तिदायिनी भक्ति मिले,
इन भूले भटके चरणों को, पथ निश्चित अनुमान मिले!
मेरी ममता को ज्ञान मिले।
मेरे मन की दुर्बलता को
दृढ़ निश्चय का आधार मिले,
मरु के पीड़ित मानव मृग को
शीतल करुणा की धार मिले,
विश्वास सीप को, कर्मों की उन्मुक्त स्वाति का दान मिले!
मेरी ममता को ज्ञान मिले!
विश्राम नहीं इन चरणों को
सन्देश मिले नव जागृति का,
प्रति पग मेरा इतिहास लिखे
युग की पवित्रतम् संस्कृति का,
अभिशापों को शीतल कर देने का मुझको वरदान मिले!
मेरी ममता को ज्ञान मिले!

❄

फोन पर आध्यात्मिक चर्चा करें

(केवल पुरुष वर्ग)

आध्यात्मिक मित्र मंडल मेरठ

मोबा. 9897437025
मोबा. 9927887788
मोबा. 09540259016

www.thearyasamaj.org

के उद्धार की करुणा से सराबोर होकर लिखी गयी है। वे प्रत्येक प्राणी के जीवन को कितनी गहराई से समझते और महत्व देते थे उसका छोटा सा उदाहरण सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा के विषय में देते हैं वे जहाँ सन्तानों को कुचेष्टाओं से रोकने की शिक्षा देने का उपदेश करते हैं पाखण्डियों के जाल में न फँसने के लिए सन्तानों को शिक्षित बनाने की बात करते हैं। वहाँ सन्तानों का जीवन असमय में न चला जाय इसके लिए सचेत करते हैं कि अज्ञान गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जल-जन्तु वाकी अन्य पदार्थ से दु:ख और तरना न जाने तो डूब कर मर सकता है। महर्षि के यह वाक्य ही बताते हैं कि उनकी करुणा के कण कहाँ तक बरस रहे हैं एक बाल ब्रह्मचारी का गृहस्थों को सन्तानों के बचाव के लिए इतनी सूक्ष्मता से समझाना उनकी अपार करुणा को ही द्योतित करता है।

गोकरुणा निधि में तो महर्षि दयानन्द महाराज के हृदय की करुणा तो अपने में समाहित नहीं होती है वे इतने अधिक प्राणिमात्र के करुणार्द्र हो गये यहाँ तक लिख गये कि हे ईश्वर क्या इन निरीह जीवों के लिए तेरे न्याय के द्वार बन्द हो गये हैं। इस प्रकार हम सर्वत्र देखते हैं कि महर्षि दयानन्द का कठोर व्यक्तित्व के पीछे करुणा सागर हिलोरें मार रहा है। अपने उपेक्षित दलित भाइयों के लिए तो उन्होंने सदियों से बन्द ज्ञान के द्वार ही खोल दिये सारी ब्राह्मण जाति ने महर्षि को इस कारण अपमानित किया, पर वे करुण सागर थे किसी प्यासे को तड़पते कैसे देख सकते थे। उन्होंने ईश्वर की सर्वकल्याणी वेदवाणी को पढ़ने को अधिकार जब अपने दलित भाइयों को दिया तो ब्राह्मणों ने आपत्ति करते हुए महर्षि से पूँछा कि जब शूद्र भी वेद पढ़ेगें तो हम क्या करेंगे? तो महर्षि ने उनकी आपत्ति को निराधार बताते हुए कहा कि जैसे हवा-पानी, सूर्य-चन्द्रमा परमात्मा ने सबके लिए बनाये हैं वैसे ही वेद का ज्ञान भी सबके लिए दिया यदि परमात्मा को शूद्रों को वेद पढ़ाना अभीष्ट न होता तो उनको आँख, कान, मुखादि न देता। और जो तुम यह कहते हो कि जब शूद्र भी वेद पढ़ेंगे तो हम क्या करेंगे तो तुम अब कुयें में जा पड़ो। इस प्रकार हम देखते हैं पदे-पदे महर्षि की करुणा दीन-दु:खी के प्रति उछल-उछल कर हृदय से बाहर आती है। पर दुर्भाग्य से लोग महर्षि दयानन्द के बहुआयामी व्यक्तित्व को समझ नहीं पाये।

काश! आज भी प्रत्येक आर्य महर्षि दयानन्द के इस करुणा कलित हृदय को समझ सके तो संसार का बहुत बड़ा उपकार हो जाये। महर्षि दयानन्द के तथाकथित अनुयायी भी यदि महर्षि की इस करुणा को समझ सकें तो निश्चित रूप से ईर्ष्या, द्वेष से युक्त वे सिर पैर के खण्डन मण्डन से समाज से दूर न होकर उसके हित का महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं जो कि महर्षि का अभीष्ट था। दीपावली महर्षि दयानन्द का निर्वाण दिवस है इस दिन उन्होंने अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया। जीवन भर सत्य अर्थ का प्रकाश करते-करते इस प्रकाश पर्व पर अपने जीवन दीप को बुझा दिया और अपने अनुयायियों को सन्देश भी दे गये, प्राणिमात्र के कल्याण के लिए सदा सत्य के प्रकाश को फैलाते हुए अपने जीवनदीप को जलाते रहना। हम सब मिलकर संकल्प लें कि महर्षि के इस विराट् व्यक्तित्व को समझकर तुच्छ स्वार्थ के कीचड़ में फंसकर जीवन बर्वाद न करें इसी में जीवन की धन्यता है। कविवर लाखनसिंह भदौरिया ने ठीक ही लिखा है कि-

कण-कण की सीमित क्षमतायें, कर न सकीं विराट् का दर्शन।
चित्र स्वयं बन गया चितेरा, कौन करे चिति का चित्रांकन।।
कैसे नाप सकेगा उसको जग, बौने विचार के पग से।
कितना बड़ा स्वप्न देखा था, कितने बड़े सत्य के दृग से।।

❁❁❁

www.thearyasamaj.org

'तपोभूमि' नवम्बर 2013 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

ऋग्वेद !! ओ३म् !! यजुर्वेद

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

श्री विरजानन्द ट्रस्ट, वेदमन्दिर–मथुरा में

चतुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनांक 6 दिसम्बर 2013 से 25 दिसम्बर 2013 तक

सभी यज्ञ प्रेमीजनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी आप सभी की भावना के अनुसार चतुर्वेद–पारायण यज्ञ आपके अपने गुरूकुल वेद मन्दिर, मथुरा में 6 दिसम्बर 2013 से रखा जा रहा है जिसकी पूर्ण आहुति 25 दिसम्बर 2013 को होगी। अत: आप सपरिवार इस यज्ञ–तीर्थ में आमन्त्रित हैं सपरिवार पधारकर इस पुण्य कार्य में सहभागी बनें। यज्ञ का समय प्रतिदिन प्रात: 8 बजे से 11 बजे तक और अपराह्न 2 बजे से सायं 5 बजे तक रहेगा। आप किसी भी सत्र में यजमान बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

यजमान बनने के इच्छुक जन पहले ही अपना समय निश्चित कर लें। दिनांक और सत्र लिखकर अवश्य वेद मन्दिर, मथुरा के पते पर भेज दें या फिर दूरभाष द्वारा सूचित कर दें।

निवेदक

(अध्यक्ष) डॉ0 सत्यप्रकाश अग्रवाल

(मंत्री) बृजभूषण अग्रवाल

(अधिष्ठाता) आचार्य स्वदेश 9456811519

सामवेद अथर्ववेद

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2013 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य

सत्य प्रकाशन

डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित